पंचमेरू नन्दीश्वर विधान

राजमल पवैया

पंचमेरू नन्दीश्वर विधान राजमल पवैया

प्रथम छह संस्करण : ९ हजार
(१७ अप्रैल १९९९ से अद्यतन)
सप्तम संस्करण : १ हजार
(२८ मई, २००९)
श्रुतपंचमी
योग : १० हजार

मूल्य : सोलह रुपये

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड
बाईस गोदाम, जयपुर

विषय–सूची

मंगलाचरण, पीठिका	१
समुच्चय पूजन	४
श्री सम्यग्दर्शन पूजन	९
श्री अष्टांग समुच्चय पूजन	२२
श्री निःशंकित अंग पूजन	२६
श्री निःकांक्षित अंग पूजन	३१
श्री निर्विचिकित्सा अंग पूजन	३५
श्री अमूढ़ दृष्टि अंग पूजन	३८
श्री उपगूहन अंग पूजन	४२
श्री स्थितिकरण अंग पूजन	४६
श्री वात्सल्य अंग पूजन	५०
श्री प्रभावना अंग पूजन	५४
श्री सम्यग्ज्ञान पूजन	५८
श्री सम्यक्चारित्र पूजन	६६
श्री पंचमहाव्रतधारक मुनिराज पूजन	७३
श्री अहिंसाव्रतधारक पूजन	७७
श्री सत्यमहाव्रतधारक मुनिराज पूजन	८२
श्री अचौर्यमहाव्रतधारक मुनिराजपूजन	८६
श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारक मुनिराज पूजन	८९
श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारक मुनिराज पूजन	९४
श्री पंचसमितिधारक मुनिराज पूजन	९९
श्री ईर्यासमितिधारक मुनिराज पूजन	१०२
श्री भाषासमितिधारक मुनिराज पूजन	१०६
श्री एषणासमितिधारक मुनिराज पूजन	११०
श्री आदाननिक्षेपणसमितिधारक मुनिराज पूजन	११४
श्री प्रतिष्ठापनसमितिधारक मुनिराज पूजन	११८
श्री तीनगुप्तिधारक मुनिराज पूजन	१२२
श्री मनोगुप्तिधारक मुनिराज पूजन	१२७
श्री वचनगुप्तिधारक मुनिराज पूजन	१३०
श्री कायगुप्तिधारक मुनिराज पूजन	१३४
अंतिम महार्घ्य	१३८
महाजयमाला	१४०
शान्तिपाठ एवं क्षमापना	१४१

पंचमेरु नन्दीश्वर विधान

रचयिता :

कविवर पण्डित राजमल पवैया

सम्पादक :

पण्डित अभयकुमार जैन शास्त्री
एम.काम., जैनदर्शनाचार्य

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015
फोन : 0141-2707458, 2705581
E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

प्रकाशकीय

पूजन-विधान की शृंखला में कविवर राजमलजी पवैया द्वारा रचित पंचमेरु नन्दीश्वर विधान का प्रकाशन करते हुए हम अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

दशलक्षण महापर्व के पश्चात् अष्टान्हिका पर्व समाज में सर्वाधिक प्रचलित पर्व है।

दशलक्षण पर्व के समान इस अवसर पर भी समाज में विद्वानों के प्रवचन और पूजन-विधान के माध्यम से धर्मलाभ लेने की परम्परा निरन्तर विकसित हो रही है। अतः इस प्रसंग के अनुरूप नन्दीश्वर पूजन-विधान की महती आवश्यकता अनुभव करते हुए पवैयाजी ने इस विधान की रचना की है। नन्दीश्वर द्वीप में 52 अकृत्रिम चैत्यालय हैं, परन्तु 52 पूजनों की रचना करने से विधान बहुत बड़ा हो जाता है और विषयवस्तु आदि की बहुत अधिक पुनरावृत्ति होती है; इसलिये इसमें पंचमेरु की पाँच, नन्दीश्वर की चारों दिशाओं की चार, मानुषोत्तर, कुण्डलगिरि, रुचकगिरि और त्रैलोक्य जिनालय पूजन जोड़कर इसे पंचमेरु नन्दीश्वर विधान का रूप दिया है।

इस उपयोगी रचना के लिए पवैयाजी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्य अनेक विधानों की भाँति पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री ने इसको भी आकर्षक रूप दिया है। श्री संजय आर शाह दादर (मुम्बई) वालों के सहयोग से पण्डित रमेशचन्दजी शास्त्री (जैन कम्प्यूटर्स) जयपुर ने इसे सुन्दर रूप प्रदान किया है। श्रीमान् दिनेशभाई शाह एवं श्रीमती डॉ. उज्ज्वला शाह ने बहुत सूक्ष्मता से प्रफूरीडिंग कर इसे शुद्ध रूप प्रदान किया है। प्रकाशन विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल ने इसकी प्रकाशन व्यवस्था की है, एतदर्थ हम सभी महानुभावों के विशेष आभारी हैं।

आशा है कि इस कृति के माध्यम से सभी लोग भक्ति, अध्यात्म और सिद्धान्त की त्रिवेणी में स्नान करके कर्मकलंकमल प्रक्षालन करने का मंगलमय पुरुषार्थ करेंगे।

– परमात्म प्रकाश भारिल्ल

महामंत्री :- अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

ॐ

श्री पंचमेरु नंदीश्वर विधान

मंगलाचरण

अनुष्टुप

मंगलं सिद्ध परमेष्ठी मंगलं तीर्थंकरं।
मंगलं शुद्ध चैतन्यं आत्मधर्मोस्तु मंगलं।।
मंगलं पंचमेरु गृह मंगलं नंदीश्वरं।
मंगलं चैत्य चैत्यालय देव नवमंगलमयम्।।

दोहा

जयति पंच परमेष्ठी जय जिनेन्द्र जगदीश।
जय जगदम्बे दिव्यध्वनि सदा झुकाऊँ शीष।।

पंचमेरु जिन चैत्य सब नंदीश्वर संयुक्त।
भाव सहित पूजन करूँ होऊँ भव से मुक्त।।

मंगल तेरह द्वीप के जिन चैत्यालय सर्व।
ऊर्ध्व अधो त्रैलोक्य के वन्दूँ तज कर गर्व।।

जिन चैत्यालय चैत्य श्री जिनवाणी जिनधर्म।
पाँचों परमेष्ठी सहित नवदेवता निष्कर्म।।

अंतरंग निर्मल बने मंगल हो सर्वत्र।
विश्व शान्ति की भावना उत्तम परम पवित्र।।

इसी भाव से हे प्रभो ! पूजन करता आज।
तुम सम बन जाऊँ विभो ! पाऊँ निज पद राज।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

पीठिका

वीरछन्द

अखिल विश्व है जिसमें सीमित वह कहलाता लोकाकाश।
अपरिसीम है जो अनंत है कहते उसे अलोकाकाश।।
चौदह राजु उतंगलोक है तीन लोक है महा विशाल।
ऊर्ध्व सात है उतंग सात में मध्य एक राजू सुविशाल।।

अष्टम भू तो प्राग्भार है सिद्ध लोक से जो शोभित।
प्रथम वलय घन द्वितीय घनोदधि तृतिय वलय तनु से मंडित।।
नीचे रत्नप्रभा आदिक हैं नर्क भूमियाँ अति दुखरूप।
संख्या में हैं सात भूमियाँ वातवलय से घिरी अनूप।।

प्रथम नर्क ऊपर है चित्रा भूमि महान विशाल प्रथम।
इस पर मध्यलोक शोभित है गोलाकार दृश्य अनुपम।।
मध्यलोक़ में असंख्यात हैं द्वीप समुद्र सर्व क्रम क्रम।
एक दूसरे से दूना दूना विस्तार सुनो आगम।।

एक लाख योजन का जम्बू द्वीप मध्य में है विख्यात।
इसमें जम्बू वृक्ष इसी से जम्बू द्वीप नाम प्रख्यात।।
लवण समुद्र इसे घेरे है फिर है खंड धातकी द्वीप।
फिर समुद्र कालोदधि घेरे फिर है पावन पुष्कर द्वीप।।

पुष्कर द्वीप मनोहर के हैं अर्ध अर्ध दोनों ही खंड।
मानुषोत्तर श्रृंग बीच में पुष्करार्ध है नाम प्रचंड।।
मनुज लोक है मात्र यहीं तक फिर है नर पर्याय अभाव।
तीर्थंकर भी जाने में असमर्थ वस्तु का यही स्वभाव।।

मनुज लोक के चंद्र सूर्य की संख्या का भी कर लो ज्ञान।
चंद्र इन्द्र हैं रवि प्रतीन्द्र हैं यह भी लो आगम से जान।।
ढाई द्वीप में एक शतक बत्तीस चंद्र इतने ही सूर्य।
जो संचार सहित हैं आगे सुस्थिर असंख्यात शशि सूर्य।।

तृतिय चतु: पंचम षष्टम सप्तम के आगे अष्टमद्वीप।
नाम द्वीप का नंदीश्वर है रहे हृदय से सदा समीप।।
नंदीश्वर समुद्र इसको घेरे है चारों ओर प्रधान।
अंतिम द्वीप स्वयंभूरमण जु इसी नाम का उदधि महान।।

प्रथम द्वीप सागर के नाम जिनागम में हैं बहु विख्यात।
अंतिम सोलह द्वीप और सागर के नाम सर्व प्रख्यात।।
किन्तु बीच के असंख्यात जो द्वीप समुद्र नाम अज्ञात।
असंख्य योजन लंबे चौड़े अकृत्रिम हैं ये प्रख्यात।।

जिन महिमा से शोभित नंदीश्वर है द्वीपों का सिरमौर।
ग्यारहवाँ कुण्डलवर द्वीप मनोरम जिनमंदिर चहुँ ओर।।
तेरहवाँ है द्वीप रुचकवर जिनमंदिर हैं चार महान।
देवों का आगमन यहाँ होता रहता गाते जिनगान।।

वातवलय आधार लोक है यह व्यवहार कथन पूरा।
निश्चय अपने से सुस्थित है निजाधार ही है पूरा।।
सर्व द्रव्य अपने अपने स्वचतुष्टय में ही रहते हैं।
अपनी मर्यादा का उल्लंघन न कभी ये करते हैं।।

पहिला है घन वातवलय दूजा है वलय घनोदधि वात।
तीजा तनु है सबका बीस बीस सहस योजन का गात।।
इस अनंत आकाश मध्य में तीन लोक है जैसे बिन्दु।
जैसे जल की बिन्दु मध्य हो सभी ओर हो जैसे सिन्धु।।

शशि रवि ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक तारे सभी ज्योतिषी देव।
इनकी संख्या असंख्यात है ये प्रकाश के पुंज सदैव।
हृदय अधिक जिज्ञासा हो तो समाधान करता आगम।
और अधिक विस्तार जानना हो तो पढ़ लो जिन आगम।।

नहीं किसी के द्वारा निर्मित नहीं किसी से है खंडित।
यह अनादि हैं ये अखंड हैं वस्तु व्यवस्था से मंडित।।

जम्बू द्वीप लवण समुद्र से घिरा हुआ है पहचानो।
खंड धातकी कालोदधि से घिरा हुआ है यह जानो।।

पुष्करवर पुष्कर समुद्र से घिरा हुआ है यह मानो।
द्वीप वारुणीवर को घेरे समुद्र वारुणीवर जानो।।
द्वीप क्षीर को घेरे है उदधि क्षीरवर पहचानो।
फिर है घृतवर द्वीप जिसे घृतवर समुद्र घेरे मानो।।

द्वीप इक्षुवर को घेरे है उदधि इक्षुवर लो पहचान।
फिर नंदीश्वर द्वीप जिसे घेरे नंदीश्वर उदधि महान।।
फिर अरणीवर द्वीप जिसे घेरे अरणीवर उदधि विशाल।
अरुणाभास द्वीप घेरता समुद्र अरुणाभास विशाल।।

कुण्डलवर को घेरे है कुण्डलवर समुद्र लो जान।
द्वीप शंखवर जिसको घेरे उदधि शंखवर लो पहचान।।
द्वीप रुचकवर तेरहवाँ जो उदधि रुचकवर वेष्ठित है।
द्वीप भुजंगवर जिसको घेरे उदधि भुजंगवर शोभित है।।

कुशवर द्वीप घिरा समुद्र कुशवर से यह तुम लो पहचान।
द्वीप क्रौंचवर उदधि क्रौंचवर सोलहवें से वेष्ठित जान।।
आगे असंख्यात द्वीप अरु असंख्यात सागर सुविशाल।
सबका थल द्विगुणित विस्तृत है एक दूसरे से सुविशाल।।

अंतिम द्वीप गिनो सोलह सोलह समुद्र के भी तुम नाम।
प्रथम मन:शिल द्वीप दूसरा है हरितास द्वीप शुभ नाम।।
है सिन्दूर द्वीप तीसरा चौथा श्याम सुद्वीप महान।
पंचम अंजनवर सुद्वीप है छट्ठा हिंगुलद्वीप महान।।

सप्तम द्वीप अरुण्यवर जानो अष्टम द्वीप काँचन जान।
नवम वज्रवर द्वीप दशम वैडूर्य द्वीप है लो पहचान।।
द्वीप नागवर ग्यारहवाँ बारहवाँ द्वीप भूतवर जान।
द्वीप यक्षवर तेरहवाँ है फिर है द्वीप देववर जान।।

पंद्रहवाँ अहीन्द्रवर जानों सोलह रमण स्वयंभू जान।
श्री सर्वज्ञदेव ने जाना अत: इसे प्रामाणिक मान।।
जो नाम द्वीप के वे ही नाम समुद्रों के जानो।
यह करणानुयोग की कथनी श्रद्धा से इसको मानो।।

कुछ कम तेरह राजू ऊँची त्रसनाली है जो त्रस लोक।
यह है चौडी इक राजू सब मिल कहलाता है त्रस लोक।।
दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक जीव सभी त्रस होते हैं।
अरु निगोदिया थावर प्राणी सब एकेन्द्रिय होते हैं।।

बडे भाग्य से त्रस होता है महा भाग्य मिलता नरतन।
नर तन से ही संयम संभव कट जाते हैं भव बंधन।।
पंचमेरु नंदीश्वर का पावन विधान है महिमामय।
इसे विनय पूर्वक करने से संशय विभ्रम होता क्षय।।

चान्द्रायण

पंचमेरु नंदीश्वर जिनगृह ध्याइये।
जिन-पूजन हित भव्य विधान रचाइये।।

अस्सी जिनगृह पंचमेरु के पूजिये।
बावन जिनगृह नंदीश्वर के पूजिये।।

पूजन करके फिर अपने में आइये।
सहजानंद स्वरूप शाश्वत ध्याइये।।

इस विधान का फल सबको यह प्राप्त हो।
चिद्रानंद चिद्घन स्वभाव उर व्याप्त हो।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

पंचमेरु नन्दीश्वरम् मंगल विधि-विधान।
अति विशुद्ध परिणाम से करता हूँ भगवान।।

१

समुच्चय पूजन

स्थापना

वीरछन्द

तीन लोक में अधोलोक है नर्कादिक पृथ्वी हैं सात।
ऊर्ध्व लोक में स्वर्गादिक हैं पुण्यों का फल है विख्यात।।
मध्यलोक भी असंख्य द्वीपों अरु समुद्र से है प्रख्यात।
ढाई द्वीप तक मनुज लोक है होते यहाँ नित्य दिन रात।।

ढाई द्वीप में पंचमेरु हैं अष्टम नंदीश्वर सुललाम।
पंचमेरु के अस्सी जिनगृह बावन नंदीश्वर जिनधाम।।
रत्नमयी जिनबिम्बों को मैं विनय भाव से करूँ प्रणाम।
अष्ट द्रव्य प्रासुक ले पूजूँ शीश झुकाऊँ नित वसुयाम।।

मोक्ष लाभ के लिए करूँ मैं तत्त्वज्ञान प्रभु भली प्रकार।
सम्यक् बोधि प्राप्त करके प्रभु हो जाऊँ भवसागर पार।।
चारों गतियों की उलझन से सुलझूँ आप कृपा भगवान।
ध्रुव पंचमगति पाऊँ स्वामी अष्ट कर्म अरि कर अवसान।।

दोहा

भाव-द्रव्य पूजन करूँ जागे स्व-पर विवेक।
सम्यग्ज्ञान प्रकाश पा तजूँ राग की टेक।।
चिदानंद चैतन्यमय निज स्वरूप को जान।
पूजन फल पाऊँ प्रभो बन जाऊँ भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्ब अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्।)

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्ब अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनं।)

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्ब अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इतिसन्निधिकरणम्।)

अष्टक

वीरछंद

द्रव्य स्वभाव पास है मेरे तो विभाव से क्या संबंध।
अपनी भूल भटकता हूँ प्रभु करता हूँ कर्मों के बंध।।
निर्मल जलधारा उर लाऊँ करूँ तत्त्व अभ्यास महान।
पंचमेरु नंदीश्वर जिनगृह जिनप्रतिमा पूजूँ भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्बेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

परद्रव्यों की संगति के कारण पाया मैंने भव-ताप।
असंयोगि मेरा स्वभाव है इसका किया न अब तक जाप।।
शुद्ध भाव चंदन अर्पित कर भव-ज्वर कर डालूँ अवसान।
पंचमेरु नंदीश्वर जिनगृह जिनप्रतिमा पूजूँ भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अक्षय पद अखंड निज भूला अंतर में छाया अज्ञान।
अक्षय ज्ञानस्वरूप न भाया किया सदा पर का अभिमान।।
शुचिमय अक्षत भेंट चढाऊँ करूँ आत्मा का कल्याण।
पंचमेरु नंदीश्वर जिनगृह जिनप्रतिमा पूजूँ भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

कामभाव के सुमन सुहाए भूला निज समभावी गंध।
निज स्वरूप पर दृष्टि न डाली परभावों में होकर अंध।।
महा शील के पुष्प प्राप्त कर तुम्हें चढाऊँ प्रभो महान।
पंचमेरु नंदीश्वर जिनगृह जिनप्रतिमा पूजूँ भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्बेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

वेदनीय की क्षुधा वेदना से पीड़ित बीता बहु काल।
पूर्ण तृप्ति का मिला न अवसर पाए भव के कष्ट विशाल।।

परम भाव नैवेद्य चढाऊँ वेदनीय का हो अवसान।
पंचमेरु नंदीश्वर जिनगृह जिनप्रतिमा पूजूँ भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाशत्रु मिथ्यात्व मोह से भ्रमित हुआ भटका संसार।
इसके पंच शरों से घायल होकर पायी व्यथा अपार।।
केवलज्ञान महान प्रकाशूँ करूँ घातिया अरि अवसान।
पंचमेरु नंदीश्वर जिनगृह जिनप्रतिमा पूजूँ भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

धर्म शुक्ल निज धूप न देखी भाए आर्तरौद्र दुर्ध्यान।
अष्टकर्म के बंधन करके चारों गति में किया प्रयाण।।
शुक्ल ध्यान की शक्ति प्राप्ति हित करूँ आत्मा का ही ध्यान।
पंचमेरु नंदीश्वर जिनगृह जिनप्रतिमा पूजूँ भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

कर्मों का फल तो संसार महा दुखसागर पीड़ा रूप।
नर नारक सुर पशुगति अथवा है निगोद गति व्यथा स्वरूप।।
महामोक्ष फल प्राप्ति हेतु मैं करूँ आत्मा का ही ध्यान।
पंचमेरू नंदीश्वर जिनगृह जिनप्रतिमा पूजूँ भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जब तक पर-कर्तृत्व भाव अंतर में बैठा है बलवान।
तब तक मोक्षमार्ग दुर्लभ है कितना भी हो पुण्य महान।।
सारे ही भव-पद दुखमय हैं निज स्वतंत्र पद के प्रतिकूल।
पद अनर्घ्य ही है अविनाशी अविकल निज स्वभाव अनुकूल।।
वसु विधि अर्घ्य भावना पूर्वक चरण चढाऊँ शक्तिप्रमाण।
पंचमेरु नंदीश्वर जिनगृह जिनप्रतिमा पूजूँ भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाऽर्घ्य

गीतिका

पंचमेरु महान जिनवर जिनालय अस्सी परम।
विनय से वंदन करूँ मैं क्षय करूँ मिथ्यात्व तम।।

द्वीप अष्टम महा सुंदर श्रेष्ठ है नन्दीश्वरम्।
जिनालय बावन परम प्रतिमा सकल भ्रम नाशकम्।।

यही है आनंद ईश्वर ज्ञान स्व-पर प्रकाशकम्।
स्व-पर भेद विज्ञान ही है ज्ञान विभ्रम नाशकम्।।

यही पाने के लिए पुरुषार्थ मेरा है प्रभो।
आपके पथ पर चलूँ मैं शक्ति ऐसी दो विभो।।

महा अर्घ्य करूँ समर्पित पूज्य जगपति ईश को।
विनय से पूजूँ जिनालय एकशत बत्तीस को।।

सहस चौदह दो शतक छप्पन महा जिनबिम्ब हैं।
आत्मा की दशा के ही यह परम प्रतिबिम्ब हैं।।

दोहा

पंचमेरु जिन नमन कर, नंदीश्वर जिन ध्याय।
महा अर्घ्य अर्पण करूँ, भव भव में सुखदाय।।

अन्तर्मुख मुद्रा अहो भविजन को सुखदाय।
आतमदर्शन प्राप्त हो मोह क्षीण हो जाय।।

तदनन्तर आवरण द्वय और कर्म अन्तराय।
क्षय होकर कैवल्य हो लोक-अलोक लखाय।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरूनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

सोरठा

अंतर्मुख जिनबिम्ब विनय सहित वंदन करूँ।
धन्य जिनेश्वर देव वीतराग सर्वज्ञ तुम।।

वीरछंद

इस त्रिलोक में ऊर्ध्व अधो के मध्य लोक है गोल विशाल।
जम्बूद्वीप सुमेरु सुदर्शन एक लाख योजन उत्ताल।।
खंड धातकी, विजय, अचल, द्वय, मेरु पूर्व पश्चिम शोभित।
पुष्करार्ध में मंदरमेरु सु विद्युन्माली द्वय निश्चित।।

चौरासी सहस्त्र योजन ऊँचे हैं चारों मेरु पवित्र।
भद्रशाल सौमनस सुनंदनवन पांडुकवन भव्य विचित्र।।
पांडुकवन में शिला पांडुक पूर्व भरत जिन नह्वन सुथल।
पश्चिम पांडुकंबला ऐरावत तीर्थंकर नह्वन विमल।।

रत्नकंबला पूर्वविदेह तीर्थंकर का नह्वन सुथान।
रत्न शिला पश्चिमविदेह तीर्थंकर का अभिषेक स्थान।।
चारों वन की चारों दिशि में चउ चउ जिनगृह स्वर्णाली।
इकशतवसु प्रतिमा शोभित हैं अस्सी गृह वैभवशाली।।

भरतैरावत अरु विदेह तीर्थंकर के होते अभिषेक।
चार निकायों के इन्द्रों देवों को होता हर्षतिरेक।।
तीर्थंकर सब सादर वन्दन करके करूँ स्व-पर कल्याण।
शुद्ध भावना षोडशकारण भाऊँ नमन करूँ भगवान।।

ढाई द्वीप की सीमा पर है मानुषोत्तर पर्वत ख्यात।
मनुज लोक की अंतिम सीमा आगे द्वीप उदधि असंख्यात।।
है सर्वज्ञ कथित जिनवाणी में करणानुयोग भूगोल।
जिसको पढ़ने से त्रिलोक रचना का होता ज्ञान अडोल।।

अष्टमद्वीप श्री नंदीश्वर इकशतत्रेसठ कोटि प्रमाण।
अरु हैं लाख चुरासी योजन इक इक दिशि विस्तार महान।।
चारों दिशिमें तेरह तेरह जिन चैत्यालय अति पावन।
इक अंजनगिरि चारों दधिमुख आठों रतिकर मन भावन।।

अंजनगिरि हैं कृष्णवर्ण के दधिमुख पर्वत श्वेत ललाम।
रतिकर पर्वत रक्त वर्ण के जिनमंदिर वन्दूँ वसुयाम।।
भव्य अकृत्रिम रत्नबिम्ब इकशतवसु इक-इक में शोभित।
अष्टान्हिका पर्व में इन्द्रादिक सुर पूजन कर मोहित।।

नहीं शक्ति जाने की अपनी यहीं विनय से करें प्रणाम।
श्रेष्ठ सुछवि नासाग्रदृष्टि जिनमुद्राएँ वन्दूँ अभिराम।।
पूजन करके निज स्वभाव की प्राप्ति हेतु करता वंदन।
तत्त्वाभ्यासपूर्वक पाऊँ हे स्वामी सम्यग्दर्शन।।

मिथ्याभ्रम का अभाव करके अविरति का भी करुँ विनाश।
संयम द्वारा प्रमाद नाशूँ अप्रमत्त बन करूँ विकास।।
फिर कषाय क्षय करने को मैं श्रेणी क्षपक चढूँ भगवन।
निज वैभव कैवल्य प्राप्त कर निजानंद रस रहूँ मगन।।

आयु पूर्ण होने पर योग अभाव करूँ अघातिया हर।
सिद्धशिला पति बनकर स्वामी पाऊँ त्रैलोकाग्र शिखर।।
पूजन का फल यही चाहता निज स्वरूप में रम जाऊँ।
बंध हेतु मिथ्यात्व नष्ट कर निज स्वभाव में जम जाऊँ।।

ॐ ह्री श्री पंचमेरुनंदीश्वरद्वीपस्थ जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दोहा

वन्दन श्री जिनराज को, चरण-कमल चितलाय।
द्रव्य-भाव स्तुति करूँ, जो शाश्वत सुखदाय।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

२

श्री पंचमेरुस्थित अस्सी जिनालय पूजन

स्थापना

चौपाई

पूजूँ पंचमेरु अस्सी गृह, सकल जगत से होकर निस्पृह।
तीन लोक में मध्यलोक शुभ, मध्य लोक में ढाई द्वीप शुभ।।

जम्बूद्वीप प्रथम शुभ सुन्दर, कर्मभूमि शाश्वत विदेह पर।
मेरु सुदर्शन स्वर्णमयी है, अति सुंदर आकाश जयी है।।

ऊँचा एक लाख योजन है, सुरदुन्दुभिस्वर गुंजित वन है।
भद्रशालवन भूपर शोभित, नन्दनवन लख सुरनर मोहित।।

वंन सौमनस महा मनहर है, पाण्डुकवन ऊपर सुंदर है।
खंड धातकी विजयमेरु है, पश्चिम दिशि में अचल मेरु है।।

पुष्करार्ध पूरब गिरि मंदर, पश्चिम विद्युन्माली सुखकर।
सूर्य चंद्र देते प्रदक्षिणा, गौरवशाली स्वतः यह बना।।

जिन अभिषेक नीर को पाकर, नाच रहा है नभ में जाकर।
है प्रत्येक मेरु पर जिनगृह, महामनोज्ञ नमूँ मैं सोलह।।

भाव सहित पूजन करता हूँ, विषय वासना सब हरता हूँ।
परम भक्ति का भाव हृदय में गुण अनंत शुद्धात्म निलय में।।

हे जिन आज पधारो उर में, परिणतिलय हो चेतन स्वर में।
तिष्ठो तिष्ठो अर्न्तयामी, मम सन्निकट पधारो स्वामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्ब अत्र अवतर अवतर संवौषट्। (इत्याह्वाननम्।)

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्ब अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। (इतिस्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्ब अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (इति सन्निधिकरणम्)

अष्टक

गीतिका

तत्त्व कौतूहली बनकर अविद्या का नाश कर।
चिदानंद स्वरूप अनुभव कर निजात्म प्रकाश कर।।
जन्म-मृत्यु-जरा विनाशक भावना भाऊँ सदा।
पंचमेरु जिनालयों के बिम्ब ध्याऊँ सर्वदा।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म सन्मुख हो अभी पर-गन्ध का मैं मोह तज।
मोक्ष निधि की प्राप्ति हित मैं शुद्ध आत्म-समाधि भज।।
भवातप ज्वर-दुख विनाशक सुचंदन लाऊँ सदा।
पंचमेरु जिनालयों के बिम्ब ध्याऊँ सर्वदा।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अलख अविकारी महा गुणवृन्दधारी हूँ स्वयं।
अखण्डित आनंद सागर बह रहा भीतर परम।।
सर्व अपद विपद विनाशक स्वपद नित ध्याऊँ सदा।
पंचमेरु जिनालयों के बिम्ब ध्याऊँ सर्वदा।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध चिद्परिणति प्रभामय चिदानंद स्वरूप है।
चित विकारी है अगर तो पूर्णतः विद्रूप है।।
काम-शर पीड़ा विनाशक शील गुण लाऊँ सदा।
पंचमेरु जिनालयों के बिम्ब ध्याऊँ सर्वदा।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्बेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अमित तेज अखंड गुण मणि प्राप्ति में अब दक्ष हो।
स्वसंवेदन रसमयी निज स्वानुभव प्रत्यक्ष हो।।

क्षुधा-व्याधि अनादि नाशक तृप्तिप्रद लाऊँ सदा।
पंचमेरु जिनालयों के बिम्ब ध्याऊँ सर्वदा।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म-ज्योति अनात्मा से भिन्न ज्ञान प्रदीप है।
परम धाम निजावलोकन ही सदैव समीप है।।
मोह मिथ्या-भ्रम विनाशक ज्ञान निज भाऊँ सदा।
पंचमेरु जिनालयों के बिम्ब ध्याऊँ सर्वदा।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वर्ण अपनी खान में ज्यों किट्टिमा से लिप्त है।
आत्मा भी उसी विधि से देह भीतर गुप्त है।।
अष्ट-कर्म व्यथा विनाशक भाव उर लाऊँ सदा।
पंचमेरु जिनालयों के बिम्ब ध्याऊँ सर्वदा।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

कुगति भ्रमण विनाशना है तो अभी होऊँ सुथिर।
बंधमय सब भोग तज दूँ सर्वथा जो हैं अथिर।।
मोक्षफल शिवरस प्रदायक आत्मा ध्याऊँ सदा।
पंचमेरु जिनालयों के बिम्ब ध्याऊँ सर्वदा।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्रह्म पद का विलासी बन मात्र ज्ञान कटाक्ष से।
लूँ अनंतानंत ध्रुव सुख शुद्ध ज्ञान गवाक्ष से।।
निधि अनंत स्वभाव की नहिं मलिन होवे भूल से।
ध्यान कर निज का बचूँ इन्द्रादि पद की धूल से।।
पद अनर्घ्य अपूर्व दाता ज्ञान निज जानूँ सदा।
पंचमेरु जिनालयों के बिम्ब ध्याऊँ सर्वदा।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाऽर्घ्य

हरिगीतिका

भाव पंचम मेरु सम है, अति महान त्रिकाल में।
शरण इसकी ग्रहण कर, लूँ भेद-ज्ञान स्वकाल में।।

पंचपरमेष्ठी दशा इसका मधुर व्यवहार है।
किन्तु यह निरपेक्ष उनसे, शुद्ध चित् परमार्थ है।।

पंचमेरु पर सुशोभित वीतरागी बिम्ब को।
अर्घ्य करता हूँ समर्पित लखूँ निज प्रतिबिंब को।।

पंचमेरु कर रहे जयघोष पंचम भाव का।
आज अवलम्बन गहूँ मैं शुद्ध ज्ञायक भाव का।।

दोहा

महा अर्घ्य अर्पित करूँ पंचमेरु जिनराज।
महामोह अरि जीतकर पाऊँ ज्ञान स्वराज।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

गीतिका

कर्मधार अनादि है अब ज्ञानधारा संग लूँ।
कर्मधारा नष्ट कर अब ज्ञानधार अमंद लूँ।।
मात्र मैं शुद्धोपयोगी बनूँ निज की शक्ति से।
चेतना पद आत्मा का जान लूँ निज भक्ति से।।

द्रव्य-गुण पर्याय निज को जान ज्यों का त्यों अभी।।
सकल लोकालोक युगपत ज्ञान में झलके सभी।।
शुद्ध अनुभव कर अभी सम्यक् स्वरूप स्वभावमय।
स्वसंवेदन प्राप्त करके त्याग राग विभावमय।।

कषायों में रति नहीं हो त्याग अशुभाचरण अब।
स्वयं में विश्वास से पा शुद्ध आत्माचरण अब।।
गर्जना हो मोह की हे प्रभु उसे विध्वंस कर।
राग की हो तर्जना तो अब उसे सर्वांश हर।।

निर्मलानंदी निलय में सजग होकर वास कर।
विभावी परिणाम सारे निमिष में ही नाश कर।।
शुद्ध धारा अबंधक है उसी का मैं लाभ लूँ।
कर्मधारा बंध कर्ता उसे भू में दाब दूँ।।

सर्वथा निज शुद्ध धारा का मिला जीवित संयोग।
फिर स्वतः उड जाएगा ये आस्रवमय बंध योग।।
शुद्ध परमात्मा बनूँगा सिद्धपुर का चिर नरेश।
ज्ञान वैभव प्रकट होगा धार अपना सिद्ध वेश।।

सोरठा

पंचमेरु जिनचैत्य चैत्यालय पूजूँ सदा।
पर विभाव विद्रूप नाथ न निरखूँ मैं कदा।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुस्थित अस्सीजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मरहठा माधवी

पंचमेरु के अस्सी जिनगृह मैंने पूजे भाव से।
तत्त्वज्ञान की महिमा पाऊँ प्रभु मिथ्यात्व अभाव से।।
आत्मचंद्र की एक किरण मैंने पायी स्व स्वभाव से।
अतः न अब चूकूँ हे स्वामी मैं इस अंतिम दाव से।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

लीन भयो व्यवहार में उकति न उपजे कोय।
दीन भयो प्रभुपद जपे मुकति कहाँ तें होय।।

- *पण्डित बनारसीदासजी*

३

जम्बूद्वीप के मध्य में

श्री सुदर्शनमेरुस्थित षोडश जिनालय पूजन

स्थापना

चान्द्रायण

मध्य लोक के मध्य सुजम्बूद्वीप है।
तीन लोक का मानो भव्य प्रदीप है।।
एक लाख योजन इसका विस्तार है।
मध्य सुदर्शनमेरु दृश्य सुखकार है।।

एक लाख योजन ऊँचा नयनाभिराम।
भव्य चूलिका ऊपर शोभित ऋजु विमान।।
बाल बराबर ही अंतर है जानिए।
पुण्य भाव से स्वर्गादिक सुख मानिए।।

भद्रशाल आदिक चारों वन शोभते।
इन्द्रादिक सुर नर विद्याधर मोहते।।
चंपक आम्र अशोक सप्तच्छद नाम है।
चारों वन की चारों दिशि जिनधाम हैं।।

सभी अकृत्रिम स्वर्णमयी सुललाम हैं।
इकशतवसु जिन-बिम्ब नयन अभिराम हैं।।
जल फलादि प्रासुक वसुद्रव्य प्रधान ले।
श्री जिनेन्द्र की निर्मल भक्ति महान ले।।

विनय सहित पूजन करता हूँ भाव से।
पूजन का फल पाऊँ जुडूँ स्वभाव से।।

ॐ ह्रीं श्री जंबूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुस्थित सोलह जिनालयजिनबिम्ब अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री जंबूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुस्थित सोलह जिनालयजिनबिम्ब अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री जंबूद्वीपस्थ सुदर्शनमेरुस्थित सोलह जिनालयजिनबिम्ब अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (इति सन्निधिकरणम्)

अष्टक

विधाता

नहीं है नीर निर्मल यह किन्तु निज भाव निर्मल है।
जन्म अरु मृत्यु की नाशक स्वभावी दृष्टि उज्ज्वल है।।
सुदर्शन मेरु की महिमा जगत विख्यात अनुपम है।
जगत को दे रहा सन्देश, निज आतम सुदर्शन है।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरुस्थित सोलह जिनालयजिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

नहीं चंदन स्व-सुरभित है सुगंधित भाव शुभ मेरा।
भवातप जनक है तो भी विभावों का बना चेरा।।
सुदर्शन मेरु की महिमा जगत विख्यात अनुपम है।
जगत को दे रहा सन्देश, निज आतम सुदर्शन है।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरुस्थित सोलह जिनालयजिनबिम्बेभ्यो संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

नहीं अक्षत अखण्डित यह निजातम द्रव्य अक्षत है।
स्वपद अक्षय मिले मुझको भावना यह मनोगत है।।
सुदर्शन मेरु की महिमा जगत विख्यात अनुपम है।
जगत को दे रहा सन्देश निज आतम सुदर्शन है।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरुस्थित सोलह जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

नहीं है पुष्प गुणकारी कामपीड़ा भयंकर हर।
ब्रह्म की दिव्य महिमा धर प्रभो अब शील धारण कर।।
सुदर्शनमेरु की महिमा जगत विख्यात अनुपम है।
जगत को दे रहा सन्देश, निज आतम सुदर्शन है।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरुस्थित सोलह जिनालयजिनबिम्बेभ्यो कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नहीं नैवेद्य निजरसमय क्षुधा की पीर क्षयकारी।
अतीन्द्रिय रसमयी जिनवर जगतपतिनाथ त्रिपुरारी।।
सुदर्शन मेरु की महिमा जगत विख्यात अनुपम है।
जगत को दे रहा सन्देश, निज आतम सुदर्शन है।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरुस्थित सोलह जिनालयजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

नहीं यह दीप भ्रम नाशक तिमिर अज्ञान क्षय कर्त्ता।
लखूँ कैवल्य दिनकर को बनूँ परभाव का हर्त्ता।।
सुदर्शन मेरु की महिमा जगत विख्यात अनुपम है।
जगत को दे रहा सन्देश, निज आतम सुदर्शन है।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरुस्थित सोलह जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

नहीं है धूप धर्मो की दशांगी सर्व दुखहारी।
कर्म अरि नष्ट कर जिनवर बताया धर्म सुखकारी।।
सुदर्शन मेरु की महिमा जगत विख्यात अनुपम है।
जगत को दे रहा सन्देश, निज आतम सुदर्शन है।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरुस्थित सोलह जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

न निज फल धर्म का भाया विषय विषफल सुहाए हैं।
शरण में मोक्षफल पाने प्रभो हम आज आए हैं।।
सुदर्शन मेरु की महिमा जगत विख्यात अनुपम है।
जगत को दे रहा सन्देश, निज आतम सुदर्शन है।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरुस्थित सोलह जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

नहीं यह अर्घ्य है जिनवर अतीन्द्रिय सौख्य का दाता।
अहो वैभव निजातम का, तुम्हीं से आज जग पाता।।

निरंजन नित्य होने की विमल बेला सहज पायी।
निजानन्द पान का अवसर मिला हे नाथ शिवदायी।।

सुदर्शन मेरु की महिमा जगत विख्यात अनुपम है।
जगत को दे रहा सन्देश, निज आतम सुदर्शन है।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरुस्थित सोलहजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अर्घ्यावली

सुदर्शनमेरुस्थित सोलह जिनालयों को अर्घ्य

दोहा

मेरु सुदर्शन चार दिशि, सोलह भवन महान।
विनयभाव से पूजकर, हो जाऊँ भगवान।।

भद्रशालवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

सोरठा

भद्रशाल वन नाम, देवों को है बहुत प्रिय।
मन में उठी हिलोर, मैं जाकर दर्शन करूँ।।
चारों वन जिनधाम, सोलह पूजूँ भाव से।
पुण्य भाव सम्पूर्ण, चरणों में अर्पित करूँ।।

रोला

भद्रशाल वन पूर्व दिशा में जिनगृह जाऊँ।
प्रासुक वसुविधि अर्घ्य चढा उर में हर्षाऊँ।।
ज्ञान भावना संचित कर मैं पाऊँ शिवपथ।
भव्य साधना बल से पाऊँ रत्नत्रय रथ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः भद्रशालवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

भद्रशाल वन दक्षिण दिशि में जिनगृह शोभित।
सारे ही परभाव शुद्ध भावों से द्रोहित।।
विनय सहित प्रभु भावमयी मैं अर्घ्य चढाऊँ।
आप कृपा से मुक्ति मार्ग पर चरण बढाऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः भद्रशालवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

भद्रशाल की पश्चिम दिशि जिनधाम अनूठा।
बीता काल अनंत धर्म से प्रति पल रूठा।।
आज सुअवसर मिला शरण जिन प्रभु की पाई।
विष भी अमृत हुआ सहज निज-छवि दर्शाई।।३।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः भद्रशालवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

भद्रशाल उत्तर वन जिनमन्दिर विशाल है।
जो भी इसे देखता हो जाता निहाल है।।
श्री जिनवाणी के प्रताप से दर्शन पाए।
ज्ञात हुआ मेरे भी अब अच्छे दिन आए।।
भेद-ज्ञान का शंखनाद सुन मैं प्रभु जागा।
यह मिथ्यात्व बंध का कारण पूरा भागा।।४।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः भद्रशालवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

नंदनवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

सोरठा

नंदनवन अभिराम चारों दिशि में चार गृह।
शोभा दिव्य ललाम भाव सहित पूजूँ सदा।।

चान्द्रायण

नंदनवन की पूर्व दिशा मंगलमयी।
सुदृढ भाव अंतर में हो तो भव जयी।।
श्री जिन चैत्यालय अति पावन दिव्य है।
पूजूँ वसुविध नाथ भावना भव्य है।।५।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः नंदनवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

नंदनवन की दक्षिण दिशा सुहावनी।
शुद्ध भाव में नहीं राग की है कनी।।
जिन-मंदिर के बिम्ब जजूँ मैं भाव से।
अब तक दुख पाया है नाथ विभाव से।।६।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः नंदनवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

नंदनवन की पश्चिम दिशि जिनधाम है।
भव्य भावना पूर्वक सतत प्रणाम है।।
राग आग से जला सदा ही हे प्रभो।
इसे बुझाने अब आया हूँ हे विभो।।७।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः नंदनवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

नंदनवन उत्तर चैत्यालय वंदिए।
शक्ति प्राप्त कर निज स्वभाव अभिनंदिए।।
यदि यह अवसर चूका तो सच मानता।
है निगोद तैयार पुनः यह जानता।।
एक समय की देर महा दुख कारिणी।
यही भव्य बेला है भवदधि तारिणी।।८।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः नंदनवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सौमनसवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

सोरठा

दिव्य सौमनसवन जिनमंदिर से शोभते।
चारों दिशि जिनधाम सर्व जगत को मोहते।।

जोगीरासा

पूर्वदिशा सौमनस जिनालय स्वर्णमयी अतिपावन।
इकशतवसु जिन प्रतिमा पूजूँ रत्नमयी मनभावन।।
क्रूर मोह मिथ्यात्व नष्ट कर आया प्रभु के द्वारे।
संयम शील सजाकर स्वामी नाशूँ भव दुख खारे।।९।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः सौमनसवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दक्षिण दिशि सौमनस जिनालय पूजूँ भाव विनय से।
सकल विभावी भाव विनाशूँ जुडूँ स्वभाव निलय से।।
चारों गति में भ्रम दुख पाए सदा रहा विष पायी।
भव पीड़ा हरने निज प्रज्ञा पावन बेला लाई।।१०।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः सौमनसवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पश्चिम दिशि सौमनस जिनालय शोभाशाली मनहर।
भवाताप क्षय करने का है यह निमित्त अति सुखकर।।
मैं अब निज पुरुषार्थ जगाऊँ ज्ञान सिन्धु प्रकटाऊँ।
सर्व जगत की माया नाशूँ कर्म सकल विघटाऊँ।।११।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः सौमनसवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

उत्तर वन सौमनस जिनालय पर सज्जित जिनध्वज है।
अपना आत्मस्वभाव त्रिकाली शाश्वत ध्रौव्य सहज है।।
लक्ष्य पूर्णता का लेकर मैं शिव पथ पर बढ जाऊँ।
गुणस्थान अष्टम चढने को शुक्ल ध्यान मैं ध्याऊँ।।
शत शत रवि शशि आभा से बढ़ प्रभु की आभा पायी।
करते ही जिन-दर्शन मुझको दिया स्वपथ दर्शायी।।१२।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः सौमनसवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाण्डुकवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

सोरठा

श्रेष्ठ चार जिनधाम पांडुक वन चारों दिशा।
हो जाऊँ निष्काम महाशील व्रत पाल कर।।

दोहा

पाण्डुकवन पूरब दिशा त्रिभुवन मंगलकार।
तीर्थंकर अभिषेक की गूँज रही जयकार।।
पाण्डुक शिला प्रसिद्ध जिन पूजूँ नाथ त्रिकाल।
परम भाव संपत्ति पा होऊँ प्रभो निहाल।।१३।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः पांडुकवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाण्डुकवन दक्षिण दिशा चैत्यालय सिरमौर।
भव्य जीव के हेतु ही यह है उत्तम ठौर।।
पाण्डुकम्बला शिला लख दृढ़ हो निज की प्रीत।
आत्मधर्म की प्रीति ही मुक्ति प्राप्ति की रीत।।१४।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः पांडुकवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाण्डुकवन पश्चिम दिशा भव्य जिनालय एक।
रत्न शिला अभिषेक लख पूजूँ मस्तक टेक।।
विषय कषाय विनाश का उर में ले उद्देश।
पञ्च महाव्रत धारलूँ धारुँ जिन मुनिवेश।।१५।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः पांडुकवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

नंदनवन उत्तर चैत्यालय वंदिए।
शक्ति प्राप्त कर निज स्वभाव अभिनंदिए।।
यदि यह अवसर चूका तो सच मानता।
है निगोद तैयार पुनः यह जानता।।
एक समय की देर महा दुख कारिणी।
यही भव्य बेला है भवदधि तारिणी।।८।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः नंदनवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सौमनसवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

सोरठा

दिव्य सौमनसवन जिनमंदिर से शोभते।
चारों दिशि जिनधाम सर्व जगत को मोहते।।

जोगीरासा

पूर्वदिशा सौमनस जिनालय स्वर्णमयी अतिपावन।
इकशतवसु जिन प्रतिमा पूजूँ रत्नमयी मनभावन।।
क्रूर मोह मिथ्यात्व नष्ट कर आया प्रभु के द्वारे।
संयम शील सजाकर स्वामी नाशूँ भव दुख खारे।।९।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः सौमनसवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दक्षिण दिशि सौमनस जिनालय पूजूँ भाव विनय से।
सकल विभावी भाव विनाशूँ जुड़ूँ स्वभाव निलय से।।
चारों गति में भ्रम दुख पाए सदा रहा विष पायी।
भव पीड़ा हरने निज प्रज्ञा पावन बेला लाई।।१०।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः सौमनसवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पश्चिम दिशि सौमनस जिनालय शोभाशाली मनहर।
भवाताप क्षय करने का है यह निमित्त अति सुखकर।।
मैं अब निज पुरुषार्थ जगाऊँ ज्ञान सिन्धु प्रकटाऊँ।
सर्व जगत की माया नाशूँ कर्म सकल विघटाऊँ।।११।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः सौमनसवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

उत्तर वन सौमनस जिनालय पर सज्जित जिनध्वज है।
अपना आत्मस्वभाव त्रिकाली शाश्वत ध्रौव्य सहज है।।
लक्ष्य पूर्णता का लेकर मैं शिव पथ पर बढ़ जाऊँ।
गुणस्थान अष्टम चढ़ने को शुक्ल ध्यान मैं ध्याऊँ।।
शत शत रवि शशि आभा से बढ़ प्रभु की आभा पायी।
करते ही जिन-दर्शन मुझको दिया स्वपथ दर्शायी।।१२।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः सौमनसवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाण्डुकवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

सोरठा

श्रेष्ठ चार जिनधाम पांडुक वन चारों दिशा।
हो जाऊँ निष्काम महाशील व्रत पाल कर।।

दोहा

पाण्डुकवन पूरब दिशा त्रिभुवन मंगलकार।
तीर्थंकर अभिषेक की गूँज रही जयकार।।
पाण्डुक शिला प्रसिद्ध जिन पूजूँ नाथ त्रिकाल।
परम भाव संपत्ति पा होऊँ प्रभो निहाल।।१३।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः पांडुकवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाण्डुकवन दक्षिण दिशा चैत्यालय सिरमौर।
भव्य जीव के हेतु ही यह है उत्तम ठौर।।
पाण्डुकम्बला शिला लख दृढ़ हो निज की प्रीत।
आत्मधर्म की प्रीति ही मुक्ति प्राप्ति की रीत।।१४।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः पांडुकवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाण्डुकवन पश्चिम दिशा भव्य जिनालय एक।
रत्न शिला अभिषेक लख पूजूँ मस्तक टेक।।
विषय कषाय विनाश का उर में ले उद्देश।
पञ्च महाव्रत धारलूँ धारुँ जिन मुनिवेश।।१५।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः पांडुकवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाण्डुकवन उत्तर दिशा जिन चैत्यालय जान।
रत्नकंबला शिला लख मैं भी बनूँ महान।।
है स्वभाव घातक प्रभो दुष्ट घातिया चार।
मुक्ति प्राप्ति बाधक विभो हैं अघातिया चार।।
इन सबको मैं क्षय करूँ दो प्रभु यह आशीष।
नित्य निरंजन पद मिले सुनो जगत के ईश।।१६।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः पांडुकवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाऽर्घ्य

वीरछन्द

मेरु सुदर्शन में शोभित जो अन्तर्मुख जिनबिम्ब महान।
आतमदर्शन में निमित्त बन करते हैं जग का कल्याण।।
सम्यग्दर्शन ही वास्तव में कहे सुदर्शन श्री जिनराज।
महा अर्घ्य मैं करूँ समर्पित पाऊँ पद अनर्घ्य साम्राज्य।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

जोगीरासा

प्रथम मेरु को वन्दन करके प्रथम भाव प्रगटाऊँ।
उपशमरस शीतल धारा से भव आताप नशाऊँ।।
भले काल अन्तर्मुहूर्त ही निज स्वभाव में आऊँ।
आज बनूँ कृतकृत्य प्रभो आनन्द अतीन्द्रिय पाऊँ।।

वीरछन्द

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक का पाया यह शुभ संयोग।
प्रगट ज्ञान भी आज हुआ, हे जिनवर! तत्त्व समझने योग्य।।

लब्धि क्षयोपशम सहज हुई अब उपशम भाव जगाऊँगा।
भूत-प्रयोजन तत्त्वों का निर्णय कर समकित पाऊँगा।।

अति विशुद्ध भावों से झेलूँ दिव्यध्वनि अमृत रसधार।
तीव्र कषायाताप शमन कर तत्त्व समझने आ जिनद्वार।।

धन्य-धन्य यह दिव्य देशना शिवपुर पथ बतलाती है।
सप्त तत्त्व षट्द्रव्य अर्थ नव रत्नत्रय दिखलाती है।।

निर्णय किया आज निज पर का ज्ञायक का ही करूँ विचार।
अनुभव रस के लिए तड़पती अतिविशुद्ध परिणति की धार।।

तत्त्वाभ्यास सुरुचि के कारण काललब्धि अब आई है।
अन्तः कोड़ाकोड़ि कर्म थिति उसने सहज बनाई है।।

निर्णय में स्पष्ट हो रहा ज्ञायक की महिमा आई।
अब अन्तर्मुहुर्त में अनुभव योग्य करणलब्धि पाई।।

अन्तर्मुख उपयोग सहज हो गया प्रगट अब उपशम भाव।
ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता विकल्प तज प्रगटा निज अनुभूति स्वभाव।।

त्रैकालिक ध्रुव हिमगिरि से अब परिणति के घन टकराये।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द रस की अनुपम धारा बरसाये।।

चिदानन्द चेतन चिद्घन से अनुभव रस बरसा है आज।
हुई आज अनुभूति प्रथम कृतकृत्य हुआ मैं हे जिनराज।।

सोरठा

उपशम भाव बिना धर्मारम्भ न होएगा।
अन्तर्मुख उपयोग में आतम दर्शन मिले।।
पूजे मैंने आज मेरु सुदर्शन जिनभवन।
पाऊँ निजपद राज निजदर्शन करके प्रभो।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शनमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

वीरछन्द

मेरु सुदर्शन की पूजन कर आत्मसुदर्शन पाऊँगा।
निज को निज पर को पर जानूँ ज्ञान-ज्योति प्रगटाऊँगा।।
जिन शासन महिमा उद्घोषक जिनगृह मैंने पूजे आज।
रत्नत्रय की विजयपताका फहरा कर लूँ निज पद राज।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

४

धातकीखंडद्वीप की पूर्व दिशा में
विजयमेरुस्थित षोडश जिनालय पूजन

स्थापना

चान्द्रायण

खंड धातकी पूर्व दिशा में जाइए।
विजयमेरु गृह दर्शन कर हर्षाइए।।
तीर्थंकर जन्माभिषेक से भव्य है।
सोलह जिन चैत्यालय शोभित दिव्य है।।
भद्रशाल भूपर फिर नंदनवन महान।
फिर सौमनस सुवन पाण्डुक वन का वितान।।
जिनगृह पूजन का सौभाग्य मिला मुझे।
आतम दर्शन का सौभाग्य मिला मुझे।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ विजयमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ विजयमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ विजयमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (इतिसन्निधिकरणम्)

अष्टक

चान्द्रायण

सरसनीर पद्म द्रह से लाया प्रभो।
जन्म-मृत्यु दुख क्षय करने आया विभो।।
विजय मेरु सोलह जिनधामों को नमन।
मिथ्या भ्रम अज्ञान सर्व कर दूँ वमन।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ विजयमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो जन्म जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन सुरभित मानुषोत्तर प्राप्त कर।
अन्तरंग में भव्य भावना व्याप्त कर।।
विजय मेरु सोलह जिन धामों को नमन।
अविरति का दुख नाथ करूँ पूरा वमन।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ विजयमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत लाया मंदर मेरु महान से।
युक्त हुआ हूँ श्री जिन धर्म प्रधान से।।
विजय मेरु सोलह जिन धामों को नमन।
संयम पाकर चरित-मोह जीतूँ सघन।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ विजयमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प सुकोमल विद्युन्माली मिल गए।
हृदय कमल के बंद पात सब खिल गए।।
विजय मेरु सोलह जिन धामों को नमन।
चिर प्रमाद के नाश हेतु ही हो यतन।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ विजयमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निज रस के नैवेद्य सजाए हैं विभो।
हृद्‌तंत्री के तार बजाए हैं प्रभो।।
विजय मेरु सोलह जिन धामों को नमन।
जिन मुनि बनकर करूँ आत्मा में रमण।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ विजयमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन-मोह अभाव कर चुका नाथ मैं।
अब चारित्र-मोहे ना लूँगा साथ में।।

विजय मेरु सोलह जिन धामों को नमन।
यथाख्यात पाने को हो निज का भजन।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ विजयमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप धर्ममय अब तो मेरे पास है।
निज स्वभाव का ही मुझको विश्वास है।।
विजय मेरु सोलह जिन धामों को नमन।
अष्टकर्म सब कर डालूँगा मैं दमन।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ विजयमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मोक्षमार्ग पूरा कर पाऊँ मोक्ष फल।
नित्य निरंजन सादि अनंत परम विमल।।
विजय मेरु सोलह जिन धामों को नमन।
विषतरु जनक कषायें कर दूँ उत्खनन।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ विजयमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य अपूर्व बनाया योग अभाव कर।
निजानंद रस पाया शुद्ध स्वभाव वर।।
विजय मेरु सोलह जिन धामों को नमन।
बंध हेतु पांचों कारण कर दूँ हनन।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ विजयमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

विजयमेरुस्थित सोलह जिनालयों को अर्घ्य

दोहा

विजय मेरु, चारों दिशा चार चार जिनधाम।
सोलह जिनगृह पूजिये उत्तम दिव्य ललाम।।

भद्रशालवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

सोरठा

जिन चैत्यालय चार भद्रशाल वन जानिए।
पूजूँ मन-वच-काय ज्ञान प्राप्ति के हेतु ही।।

राधिका

वन भद्रशाल जिन-मंदिर पूर्व मनोरम।
है स्वर्णमयी अकृत्रिम अति सुन्दरतम।।
दृष्टित होते ही क्रोध न रहने पाता।
उर क्षमा भाव जागृत होकर हर्षाता।।१।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः भद्रशालवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भू भद्रशाल दक्षिण जिन-मंदिर सुन्दर।
ध्वज पंक्ति सुशोभित दृश्यमान अति मनहर।।
दृष्टित होते ही मान न रहने पाता।
उर मार्दव भाव जु विनयशील मुसकाता।।२।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः भद्रशालवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भू भद्रशाल पश्चिम जिन-मंदिर पावन।
है रत्न-बिम्ब से शोभित अति मन भावन।।
दृष्टित होते ही माया सब उड़ जाती।
परिणति ऋजुतामय सहज त्वरित जुड़ जाती।।३।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः भद्रशालवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भू भद्रशाल जिनभवन दिशा उत्तर में।
जिनमुनियों को तो राग न होता पर में।।
यह सत्य जानकर लोभ कषाय न रहती।
जाग्रत हो उर में शौच भावना बहती।।४।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः भद्रशालवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदनवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

सोरठा

विजय मेरु सुविशाल नंदनवन चारों दिशा।
चार जिनालय भव्य एक-एक कर पूजिये।।

राधिका

नंदनवन पूर्व जिनालय शोभाशाली।
इकशत वसु हैं जिनबिम्ब श्रेष्ठ रत्नाली।।
नंदनवन पूर्व दिशा मंदिर दर्शन कर।
हे प्रभु ! संयम रत्नों से यह झोली भर।।५।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः नंदनवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदनवन दक्षिण दिशा भव्य चैत्यालय।
स्वर्णाभ जिनालय मानो हो सिद्धालय।।
निज पर विवेक का भान हुआ अभ्यंतर।
अन्तर-बाहर तप धारूँ प्रभु निज अंतर।।६।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः नंदनवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदनवन पश्चिम दिशा धाम जिनवर का।
हो जाता लख स्वयमेव ज्ञान निज-पर का।।
आत्मोत्पन्न सुख की है प्रभु अभिलाषा।
परभावों का कर त्याग ज्ञान निज भासा।।७।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः नंदनवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदनवन उत्तर दिशा जिनालय जाऊँ।
निज दर्शन कर निज आत्म सुदर्शन पाऊँ।।
परमाणु मात्र नहिं जग में मेरा जाना।
हो आत्मब्रह्म में लीन स्व-पर पहचाना।।८।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः नंदनवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सौमनसवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

दोहा

विजय सौमनसवन सदा भव्यों को हितकार।
चार जिनालय पूजकर गाऊँ मंगलचार।।

रोला

पूर्व दिशा सौमनस सुवन अति मंगलकारी।
भव्य जिनालय स्वर्णमयी की शोभा न्यारी।।
ज्ञात दृष्टा निज स्वभाव का ज्ञान करूँ मैं।
श्री जिनवर पद पूजन कर अज्ञान हरूँ मैं।।९।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः सौमनसवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दक्षिण दिशा सौमनसवन जग में विख्याता।
मुक्ति-पंथ पर वह आता जो निज को ध्याता।।
जो स्व-ज्ञान का आश्रय ले आगे बढ़ता है।
बिना रुके ही क्षायिक श्रेणी पर चढ़ता है।।१०।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः सौमनसवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम दिशा सौमनसवन है शोभाशाली।
स्वर्णमयी चैत्यालय जिन-प्रतिमा रत्नाली।।
पुण्य-पाप प्रक्षालित होते निज स्वभाव से।
शुद्ध सिद्ध पद मिलता है भव के अभाव से।।११।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः सौमनसवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर दिशा सौमनसवन जग में प्रसिद्ध है।
जिन पूजक श्रावक हो जाता स्वयं सिद्ध है।।
ज्ञानी तो परभावों को तत्काल छोड़ता।
सर्व विभावी भावों से निज दृष्टि मोड़ता।।१२।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः नंदनवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाण्डुकवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

दोहा

विजय मेरु पाण्डुकसुवन ऊँचा भव्य विशाल।
तीर्थंकर अभिषेक से गर्वित उन्नत भाल।।

रोला

पाण्डुक वन की पूर्व दिशा भी मंगलमय है।
होती जिन तीर्थेशों की गुंजित जय जय है।।
हैं संसार बंध के कारण चारों प्रत्यय।
इनके नाश बिना होता है कभी न भव जय।।१३।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः पाण्डुकवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाण्डुक वन की दक्षिण दिशि में जिन चैत्यालय।
निर्मल भावों द्वारा पूजूँ निज भावालय।।
भावहीन है सर्व क्रिया दुखदायिनि जानी।
भाव सहित जो क्रिया वही सुखदायिनि मानी।।१४।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः पाण्डुकवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाण्डुक वन की पश्चिम दिशि में श्री जिनमंदिर।
स्वर्णमयी है रत्न-कलश से शोभित सुन्दर।।
शुद्ध मोक्ष का कारणभूत स्वभाव स्वयं का।
तिरोभूत अज्ञान भाव कर फल पा श्रम का।।१५।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः पाण्डुकवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाण्डुक वन की उत्तर दिशि में मंगल वर्धक।
जिन-चैत्यालय दर्शन से हो नर भव सार्थक।।
कर्म-मैल को तिरोभूत कर शिव सुख पाऊँ।
विमल भावना द्वादश प्रतिपल प्रतिक्षण भाऊँ।।१६।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः पाण्डुकवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाऽर्घ्य

वीरछन्द

विजय मेरु करता है निश-दिन, वीतराग प्रभु का जय घोष।
क्योंकि प्रभु ने विजय प्राप्त की, जीते हैं अष्टादश दोष।।
पँचेन्द्रिय विषयों की वांछा से जग हुआ पराजित है।।
विषयजयी श्री जिन-चरणों में वाञ्छा करूँ विसर्जित हैं।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरोः पाण्डुकवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिन- बिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

विजय मेरु वन्दन करूँ मोह क्षपण के काज।
प्रगटे क्षायिक भाव यह चाहूँ हे जिनराज।।

वीरछन्द

मोह शत्रु पर विजय प्राप्त कर सम्यग्दर्शन प्राप्त करूँ।
पुनः न जीवित हो पाये वह मोह समूल विनाश करूँ।।
ज्ञान ज्ञान में लीन रहे प्रभु चरितमोह भी क्षीण करूँ।
फिर अन्तर्मुहूर्त में जिनवर घातित्रय प्रक्षीण करूँ।।

अखिल विश्व की सत्ता का अवलोकन करता जो सामान्य।
वह अनन्त दर्शन प्रगटे अरु निज-पर भेद प्रकाशक ज्ञान।।
दान लाभ भोगोपभोग वीर्यान्तराय का नाश करूँ।
सादि-अनन्त कालतक जिनवर शाश्वत सुख का भोग करूँ।।
इन नव केवललब्धि रमा में रमण निरन्तर हो जिनराज।
फिर अघाति का भी क्षय करके प्राप्त करूँगा शिवपद राज।।

विजयमेरु के जिनबिम्बों को सादर अर्घ्य चढाता हूँ।
राग भाव पर विजय प्राप्त हो यही भावना भाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री विजयमेरुस्थित षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा

विजयमेरु जिनबिम्ब सब ही पूजे भाव से।
देखा निज प्रतिबिम्ब मुक्तिमार्ग में पा गया।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

५

धातकीखंड की पश्चिम दिशा में
अचलमेरुस्थित षोडश जिनालय पूजन

स्थापना

ताटक

खंड धातकी पश्चिम दिशि में अचल मेरु है मन भावन।
सहस चुरासी योजन ऊँचा सोलह जिनगृह युत पावन॥
इन्द्रादिक सुर मुनि विद्याधर जिन पूजन को आते हैं।
भक्ति भाव से विनय पूर्वक अपना शीष झुकाते हैं॥

पर्यायों के प्रबल वेग में अचल रहा निज ज्ञायक भाव।
भेद-प्रभेदों में भी रहता एक अखंड अभेद स्वभाव॥
अचलमेरु की पूजन करके चहुँगति भ्रमण मिटाऊँगा।
अचल रहूँगा निज स्वभाव में अचल शिवालय पाऊँगा॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (इतिसन्निधिकरणम्)

अष्टक

चान्द्रायण

वीतराग भावों का निर्मल नीर हो।
विविध रोग की नष्ट सकल भवपीर हो॥
अचलमेरु महिमामय सोलह जिन भवन।
मुक्ति प्राप्ति का सतत करूँ प्रभु मैं यतन॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो जन्म जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

वीतराग भावों का चंदन अब मिले।
अन्तर्मन की आभा निज मुख पर खिले॥
अचलमेरु महिमामय सोलह जिन भवन।
मुक्ति प्राप्ति का सतत करूँ प्रभु मैं यतन॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

वीतराग अक्षत स्वभाव जागे विभो।
मिथ्यादर्शन अविरति अब भागे प्रभो॥
अचलमेरु महिमामय सोलह जिन भवन।
मुक्ति प्राप्ति का सतत करूँ प्रभु मैं यतन॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

वीतराग पुष्पों की समभावी सुगंध।
काम व्याधि हर क्षय करती संसार द्वंद॥
अचलमेरु महिमामय सोलह जिन भवन।
मुक्ति प्राप्ति का सतत करूँ प्रभु मैं यतन॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

वीतराग भावों के चरु अनुभवमयी।
क्षुधा वेदना नाशक भव-सागर जयी॥
अचलमेरु महिमामय सोलह जिन भवन।
मुक्ति प्राप्ति का सतत करूँ प्रभु मैं यतन॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वीतराग भावों के दीप सजाऊँगा।
मोह तिमिर एकान्त सर्व विघटाऊँगा॥

अचलमेरु महिमामय सोलह जिन भवन।
मुक्ति प्राप्ति का सतत करूँ प्रभु मैं यतन।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

वीतराग भावों की धूप बनाऊँगा।
अष्ट कर्म पर नाथ आज जय पाऊँगा।।
अचलमेरु महिमामय सोलह जिन भवन।
मुक्ति प्राप्ति का सतत करूँ प्रभु मैं यतन।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

वीतराग भावों का फल सुखरूप है।
मुक्ति भवन का स्वामी निज चिद्रूप है।।
अचलमेरु महिमामय सोलह जिन भवन।
मुक्ति प्राप्ति का सतत करूँ प्रभु मैं यतन।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

वीतराग भावों के अर्घ्य प्रधान लूँ।
पद अनर्घ्य अविनश्वर नाथ महान लूँ।।
ज्ञान भाव की उठे हृदय में प्रभु तरंग।
सिद्ध समान शुद्ध है मेरा अंतरंग।।
अचलमेरु महिमामय सोलह जिन भवन।
मुक्ति प्राप्ति का सतत करूँ प्रभु मैं यतन।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

अचलमेरुस्थित सोलह जिनालयों को अर्घ्य

दोहा

अचल मेरु की चहुँ दिशा सोलह भवन महान।
विनय भाव से पूजकर हो जाऊँ भगवान।।

भद्रशालवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

सोरठा

अचल मेरु चहुँ ओर भद्रशाल वन चार गृह।
अर्घ्य चढाऊँ नाथ सम्यग्दर्शन प्राप्ति हित।।

राधिका

जिन भवन पूर्व दिशि भद्रशाल वन सुन्दर।
स्वर्णिम चैत्यालय तिहुँजग वंदित मनहर।।
पर्यायदृष्टि सर्वांश दुखों की दाता।
निज द्रव्यदृष्टि सर्वांश सुखों की दाता।।
पद अचल अडोल अकंप अनश्वर पाऊँ।
चंचलता तज कर ध्यान अचंचल ध्याऊँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः भद्रशालवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वन भद्रशाल दक्षिण दिशि जिन चैत्यालय।
इकशत वसु रत्नों की प्रतिमा का आलय।।
जो भाव शुभाशुभ के बनते कर्ता हैं।
वे उन भावों के फल के भी भोक्ता हैं।।
पद अचल अडोल अकंप अनश्वर पाऊँ।
चंचलता तज कर ध्यान अचंचल ध्याऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः भद्रशालवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वन भद्रशाल पश्चिम दिशि जिनगृह पावन।
है रत्नमयी जिनबिम्ब श्रेष्ठ मन भावन।।
दुष्टाष्ट कर्म नोकर्म रहित शुद्धातम।
निर्मल स्वद्रव्य है ज्ञान शरीरी निरुपम।।
पद अचल अडोल अकंप अनश्वर पाऊँ।
चंचलता तज कर ध्यान अचंचल ध्याऊँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः भद्रशालवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वन भद्रशाल उत्तर गिरि का जिन-मंदिर।
है दश प्रकार ध्वज चहुँदिशि उज्ज्वल मनहर॥
व्यवहार लीन जो होते भव भव रोते।
जो निज स्वभाव में लीन अचल वे होते॥
पद अचल अडोल अकंप अनश्वर पाऊँ।
चंचलता तज कर ध्यान अचंचल ध्याऊँ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः भद्रशालवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदनवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

चौपाई

नंदनवन जिन छवि जगदीश, चार जिनालय पूजूँ ईश।
इनकी पूजन करूँ महान, कर्म बंध कर दूँ अवसान॥

चान्द्रायण

नंदनवन के पूर्व जिनालय जाइए।
इक शत वसु जिनबिम्ब नित्य ही ध्याइए॥
कर्म और नोकर्म रहित हूँ सर्वदा।
गुणस्थान मार्गणा विहीनी हूँ सदा॥
निज स्वरूप को लक्ष्य बना लूँ आज ही।
सम्यक् मार्ग बताते हैं जिनराज जी॥५॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः नंदनवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदनवन की अति सुन्दर दक्षिण दिशा।
जिनगृह दृष्टित हो तो क्षय विभ्रम निशा॥
निज स्वरूप साधना साधु का काम है।
उसके भीतर ही शिव सुख का धाम है॥
निज स्वरूप को लक्ष्य बना लूँ आज ही।
सम्यक् मार्ग बताते हैं जिनराज जी॥६॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः नंदनवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदनवन पश्चिम दिशि है महिमामयी
पंक्ति बद्ध ध्वज लहराते त्रिभुवन जयी॥
पर का कर्ता कभी नहीं है आत्मा।
यह तो ध्रुव त्रैकालिक है परमात्मा॥
निज स्वरूप को लक्ष्य बना लूँ आज ही।
सम्यक् मार्ग बताते हैं जिनराज जी॥७॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः नंदनवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदनवन की उत्तर दिशा महान है।
जिन चैत्यालय इसमें महा प्रधान है॥
नित्य ज्ञान रत जो स्वभाव संपुष्ट हो।
शाश्वत सुख से ओत प्रोत हो तुष्ट हो।
निज स्वरूप को लक्ष्य बना लूँ आज ही।
सम्यक् मार्ग बताते हैं जिनराज जी॥८॥

ॐ ह्रीं श्री धातकीखंडद्वीपस्थ अचलमेरोः नंदनवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सौमनसवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

चौपाई

वन सौमनस जिनालय चार, रत्नबिंब जिन सुछवि अपार॥
निज स्वरूप का हो प्रभु ज्ञान, एक समय में हर अज्ञान॥

भुजंगी

चिदानंद चैतन्य निज रूप ध्याऊँ।
निजानंद रस पान कर मुस्कराऊँ॥
अचल सौमनस पूर्व में जिन भवन है।
परम भक्ति से नाथ सादर नमन है॥
नहीं काल कोई है शिव पथ में बाधक।
मेरा आत्म चिन्तन ही परिपूर्ण साधक॥९॥

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः सौमनसवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनंतों गुणों का मैं सागर हूँ स्वामी।
मुझे आज अपना हुआ भान नामी।।
सुदक्षिण दिशा सौमनस वन जिनालय।
धरा पर ही उतरा हो मानो शिवालय।।
नहीं काल कोई है शिव पथ में बाधक।
मेरा आत्म चिन्तन ही परिपूर्ण साधक।।१०।।

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः सौमनसवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिन-बिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनंतानुबंधी कषायें विनाशूँ।
स्वभावाश्रय से स्वयं को प्रकाशूँ।।
दिशा पश्चिमी सौमनस भव्य मंदिर।
शतक एक वसुबिम्ब शोभित मनोहर।।
नहीं काल कोई है शिव पथ में बाधक।
मेरा आत्म चिन्तन ही परिपूर्ण साधक।।११।।

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः सौमनसवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिन-बिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अप्रत्याख्यानी कषायें विनाशूँ।
स्व-पर ज्ञान बल से मैं अविरति निकासूँ।।
अचल सौमनस उत्तरी चैत्यालय।
सहज रत्न बिम्बों से शोभित महालय।।
नहीं काल कोई है शिव पथ में बाधक।
मेरा आत्म चिन्तन ही परिपूर्ण साधक।।

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः सौमनसवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिन- बिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाण्डुकवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

चौपाई

पाण्डुक वन की महिमा जान, जिन अभिषेक पवित्र महान।।
यह षोडश भावना प्रताप, हरते प्रभु भव का संताप।।

राधिका

पाण्डुक वन पूर्व दिशा है शोभाशाली।
है स्वर्णमयी रत्नालय महिमाशाली।।
कर्मोदय में भी जो समभावी रहते।
वे महा मोक्ष सुख पाते निज में बहते।।
चैतन्य स्वभावी दृश्य मुझे दिखला दो।
मेरे स्वभाव की महिमा प्रभु बतला दो।।१३।।

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः पाण्डुकवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाण्डुक वन दक्षिण दिशा महान मनोहर।
जिन चैत्यालय पर कलश सुसज्जित सुन्दर।।
मैं एक शुद्ध दर्शन अरु ज्ञान स्वरूपी।
ज्ञायक स्वभाव का अधिपति हूँ चिद्रूपी।।
चैतन्य स्वभावी दृश्य मुझे दिखला दो।
मेरे स्वभाव की महिमा प्रभु बतला दो।।१४।।

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः पाण्डुकवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाण्डुकवन पश्चिम दिशा अचल गिरि पावन।
गरिमामय जिन चैत्यालय है मन भावन।।
अपरिग्रह धारी साधु अनिच्छुक होता।
निज भावों में जागृत रह पर में सोता।।
चैतन्य स्वभावी दृश्य मुझे दिखला दो।
मेरे स्वभाव की महिमा प्रभु बतला दो।।१५।।

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः पाण्डुकवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाण्डुक वन उत्तर दिशा श्री जिनमंदिर।
है रत्न-बिम्ब से शोभित अनुपम सुन्दर।।
मैं वर्ग वर्गणा गुणस्थान से न्यारा।
मैं बंध उदय से दूर शुद्ध अविकारा।।

चैतन्य स्वभावी दृश्य मुझे दिखला दो।
मेरे स्वभाव की महिमा प्रभु बतला दो।।१६।।

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः पाण्डुकवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाऽर्घ्य

मत्तसवैया

अरहंत सिद्ध आचार्य दशा उवझाय साधु पांचों मेरी।
मैं अचल रहूँ स्वचतुष्टय में है मुक्ति वधू मेरी चेरी।।

मैं अपने में ही सुस्थित हूँ मुझको न कहीं भी जाना है।
जो निधियाँ मेरे भीतर हैं केवल उनको प्रगटाना है।।

यह महा अर्घ्य निज भावों का सादर अर्पित है तुम्हें देव।
पद प्राप्त अचल हो मुझको प्रभु हो द्रव्यदृष्टि उज्ज्वल स्वयमेव।।

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

अचल मेरु सन्देश यह अचल एक निज भाव।
परिणति निज में अचल हो, भोगे शिवसुख भाव।।

मत्तसवैया

संसार घोर दुख सागर में पल भर भी चैन न मिल पाया।
सुख पाने के लाखों उपाय करके भी सौख्य न दरशाया।।
समझा दुख को ही सुख मैंने अपनी महिमा से दूर रहा।
चारों गतियों मे चल-चल कर परभावों में ही चूर रहा।।

बहु पुण्य योग से मिले आप पायी सर्वोत्तम जिनवाणी।
मेरी सुबुद्धि अब जाग उठी पायी दिव्यध्वनि कल्याणी।।
अब ज्ञानज्योति से हे जिनवर निज आत्मतत्त्व को पहचाना।
दृग-ज्ञान-वीर्य के इस विकास से रत्नत्रय निधि को जाना।।

क्षय-उपशम हुआ मोह का प्रभु शुद्धातम का रस पान किया।
कुछ अल्प दोष भी रहे शेष, जिनवाणी से यह जान लिया।।
यह अर्घ्य समर्पित करके प्रभु वे अल्प दोष विनशाऊँगा।
परिणति हो निज में अचल प्रभो! रत्नत्रय निधियाँ पाऊँगा।।

सोरठा

अचल मेरु जिनबिम्ब, सब ही पूजे भाव से।
देखा निज प्रतिबिम्ब मुक्ति मार्ग अब पा गया।।

ॐ ह्रीं श्री अचलमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वीरछन्द

अचल मेरु के जिनबिम्बों के दर्शन कर निज भान हुआ।
धन्य धन्य यह ज्ञान क्षयोपशम जिसमें भेद-विज्ञान हुआ।।
किन्तु ज्ञान यह अचल भाव से निज मे लीन न हो पाता।
ध्रुव अनुपम अरु अचल स्वभावी आत्म भावना ही भाता।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

हे प्रभो! चरणों में तेरे आ गये।
भावना अपनी का फल हम पा गये।।टेक।।

वीतरागी हो तुम्हीं सर्वज्ञ हो, सप्ततत्त्वों के तुम्हीं मर्मज्ञ हो।
मुक्ति का मारग तुम्हीं से पा गये।।१।।

विश्व सारा है झलकता ज्ञान में, किन्तु प्रभुवर लीन हैं निजध्यान में।।
ध्यान में निजज्ञान को हम पा गये।।२।।

तुमने बताया जगत के सब आत्मा, द्रव्यदृष्टि से सदा परमात्मा।।
आज निज परमात्मा पद पा गये।।३।।

६

पुष्करार्ध द्वीप की पूर्व दिशा में
मंदरमेरुस्थित षोडश जिनालय पूजन

स्थापना

चान्द्रायण

मंदर मेरु जिनालय सोलह को नमन।
निज स्वरूप में हो जाऊँ प्रभु मैं मगन।।
पुष्करार्ध की पूर्व दिशा में जाइए।
गिरि सुमेरु चारों वन जिनगृह ध्याइए।।

भद्रशाल नंदनवन शोभा निरखिए।
वन सौमनस पाण्डुक वन छवि परखिए।।
स्वर्णमयी जिन-मंदिर महा विशाल हैं।
सभी अकृत्रिम मानो त्रिभुवन भाल हैं।।

भक्ति भाव से विनय पूर्वक पूजिए।
आत्म-तत्त्व दर्शन कर सम्मुख हूजिए।।
अष्ट द्रव्य ले पूजन हित वन्दन करूँ।
अष्ट कर्म के सारे ही बंधन हरूँ।।

दोहा

जिनवर की पूजन करूँ पढ़कर प्रवचनसार।
निजस्वरूप में लीन हो ध्याऊँ समय का सार ।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्ब अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्ब अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्ब अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (इति सन्निधिकरणम्)

अष्टक

भुजंगी

सरल भावना हो हृदय में हमारे।
त्रिविधि व्याधियों के विलय हो दुधारे।।
सुगृह मेरु मंदर की पूजन करें हम।
महामोह मिथ्यात्व से अब डरें हम।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो जन्म जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज शुद्ध चंदन तिलक हम लगाएँ।
भवातप की ज्वाला को पल में बुझाएँ।।
सुगृह मेरु मंदर की पूजन करें हम।
महादुष्ट अविरति के बंधन हरें हम।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

परम शुद्ध अक्षत स्वभावी स्व परिणति।
स्वपद श्रेष्ठ अक्षत की दाता विमलमति।।
सुगृह मेरु मंदर की पूजन करें हम।
प्रमादों को क्षय करके जागृत रहें हम।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सुगंधित स्व-पुष्पों की माला बनाएँ।
मिटा काम पीड़ा महा शील पाएँ।।
सुगृह मेरु मंदर की पूजन करें हम।
कषायों को क्षय कर बनें ज्ञानघन हम।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वरसमय स्वचरु से परम तृप्ति पायें।
क्षुधा व्याधियों की व्यथाएँ मिटायें।।
सुगृह मेरु मंदर की पूजन करें हम।
करें योग त्रय क्षीण अब सिद्ध हो हम।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज ज्ञान दीपक स्वभावी जगायें।
त्वरित मोह चारित्र को हम भगायें।।
सुगृह मेरु मंदर की पूजन करें हम।
मिटा बंध के भाव जिनवर बनें हम।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशों धर्म की धूप उर में सजायें।
विलय कर्म आठों करें चैन पायें।।
सुगृह मेरु मंदर की पूजन करें हम।
सहज पूर्ण सिद्धत्व धारण करें हम।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज सौख्य दाता सुफल मोक्ष पायें।
विभावों से निर्मित महल हम गिरायें।।
सुगृह मेरु मंदर की पूजन करें हम।
सहज तत्त्व संपत्ति के पति बनें हम।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज शुद्ध भावों के हो अर्घ्य मनहर।
स्वपद हो अनर्घ्य आज अपने ही भीतर।।
प्रभो हम चलें मुक्ति की ओर सत्वर।
जहाँ सौख्य धारा बहेगी निरंतर।।
सुगृह मेरु मंदर की पूजन करें हम।
इसी भावना में ही जागृत रहें हम।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ मंदरमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

मंदरमेरुस्थित सोलह जिनालयों को अर्घ्य

दोहा

पुष्करार्ध की पूर्व दिशि मंदर मेरु महान।
सोलह जिनगृह पूजिए पृथक पृथक भगवान।।

भद्रश

चार जि
पूजन क

भद्रशाल वन
परम गुरु
ज्ञान भाव का
महा सुख

ॐ ह्रीं श्री पु
जिनालयजिनबिम्बेभ्य

भद्रशाल वन
परम गुरु
निज स्वरूप व
महा सुख

ॐ ह्रीं श्री पुष्
जिनालयजिनबिम्बेभ्य

भद्रशाल वन
परम गुरु
राग भाव में
महा सुख

ॐ ह्रीं श्री पुष्
जिनालयजिनबिम्बेभ्यो

भद्रशाल वन
परम गुरु ह
समयसार निज
महा सुख हे

ॐ ह्रीं श्री पुष्
जिनालयजिनबिम्बेभ्यो

वन सौमनस दिशा पश्चिम का चैत्यालय पूजूँ भगवान।
ऋद्धिधारि ऋषियों के द्वारा वंदित महिमामयी महान।।
गगन स्पर्शी अध्यवसानों का व्यापार तजूँ स्वामी।
सप्त तत्त्व के सप्त स्वरों में निज को नित्य भजूँ स्वामी।।११।।

ॐ ह्रीं श्री विद्युन्मालीमेरोः सौमनसवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वन सौमनस दिशा उत्तर का चैत्यालय पूजूँ द्युतिवान।
षष्टम गुणस्थानवर्ती मुनि ही करते सिद्धों का ध्यान।।
सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनि करते हैं अपना ही ध्यान।
फिर क्षायिक श्रेणी चढ़कर पाते हैं निज आनन्द महान।।१२।।

ॐ ह्रीं श्री विद्युन्मालीमेरोः सौमनसवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाण्डुकवनस्थित चार जिनालयों को अर्घ्य

सोरठा

विद्युन्माली मेरु पाण्डुक वन सर्वोच्च है।
तीर्थंकर अभिषेक जन्म समय होता सदा।।

रोला

विद्युन्माली पूर्व दिशा पाण्डुक वन जाऊँ।
नम्र भाव से विनय सहित प्रभु अर्घ्य चढ़ाऊँ।।
आत्म भावना ही भाऊँगा अन्तर्यामी।
निज परिणति को सीमा में लाऊँगा स्वामी।।१३।।

ॐ ह्रीं श्री विद्युन्मालीमेरोः पाण्डुकवनस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दक्षिण दिशा श्री जिन चैत्यालय को वन्दूँ।
अविकल अविकारी स्वरूप निज का अभिनन्दूँ।।
चिन्तामणि चैतन्य तत्त्व का मैं हूँ स्वामी।
नित्यानित्य विकल्पों से मैं विरहित नामी।।१४।।

ॐ ह्रीं श्री विद्युन्मालीमेरोः पाण्डुकवनस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम दिशा जिनालय विद्युन्माली ध्याऊँ।
संयम रवि का तिलक भाल पर आज सजाऊँ।।
ज्ञायक तो केवल ज्ञायक है निर्णय लाऊँ।
वस्तु स्वरूप ज्ञान करके सम्यक् पथ पाऊँ।।१५।।

ॐ ह्रीं श्री विद्युन्मालीमेरोः पाण्डुकवनस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर दिशा जिनालय को मैं सविनय पूजूँ।
अपने परमात्मा की छवि को सतत सहेजूँ।।
स्व-पर भेद-विज्ञान जगाऊँ सावधान हो।
सिद्धायतन भाव से पूजूँ निरभिमान हो।।१६।।

ॐ ह्रीं श्री विद्युन्मालीमेरोः पाण्डुकवनस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाऽर्घ्य

ताटंक

जो भी आगम चक्षु बनेगा ज्ञान निष्ठ हो जाएगा।
प्रकट पूर्ण आनंदोदधि पा आत्म निष्ठ हो जाएगा।
शुद्ध ज्ञान रत होने से ही होगा वही सर्वतः चक्षु।
पर में जिसकी दृष्टि रहेगी वह तो होगा इन्द्रिय चक्षु।।

कुछ भी नहीं अदृश्य कभी भी आगम चक्षु पास जिनके।
धर्म मार्ग पाते न कभी भी इन्द्रिय चक्षु मात्र जिनके।।
आत्म महत्ता रूप आत्म गौरव से जो शोभित होगा।
पाप-पुण्यमय सकल लोक भावों से वह मोहित होगा।।

आगम चक्षु प्राप्त करने को महा अर्घ्य अर्पित करता।
पर-द्रव्यों के प्रति ममत्व को आज पूर्ण हे प्रभु! हरता।।
सिद्धायतन महान विराजे जिनबिम्बों को करूँ प्रणाम।
ज्ञायक भाव भावना द्वारा पाऊँ मैं सिद्धों का धाम।।

ॐ ह्रीं श्री विद्युन्मालीमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

पंचमगिरि को नमन कर ध्याऊँ पंचम भाव।
पंचमगति पाऊँ प्रभो प्रगटे सहज स्वभाव।

वीरछन्द

परम ज्योति कारण-परमात्मा परमेश्वर शुद्धात्म स्वरूप।
अलख निरंजन अक्षय अव्यय मैं अनुपम चेतन चिद्रूप।।
परम-पुरुष अविनाशी ज्ञायक सहज पारिणामिक निजभाव।
निराबाध अच्छेद्य अभेद्य अनादि-अनंत अखंड स्वभाव।।

वीतराग सर्वज्ञ आप्त अर्हन्त अकृत्रिम चित् सामान्य।
उपशमादि चारों भावों से सदा अगोचर मैं भगवान।।
नित्य निरंजन शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध एक चैतन्य स्वभाव।
कारण समयसारमय चेतन अजर अमर अकलंक स्वभाव।।

जिसका दर्शन सम्यग्दर्शन जिसे जानता सम्यग्ज्ञान।
जिसमें थिरता ही कहलाता सम्यक् चारित्र निधि महान।।
जो अपने आश्रित परिणति को रत्नत्रय निधि दाता है।
वंदन उस चैतन्यराज को जो निज-पर का ज्ञाता है।।

सोरठा

अंतर्मुख जिनबिंब विद्युन्माली के भजूँ।
ध्याऊँ ज्ञायक भाव पंच परावर्तन तजूँ।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीपस्थ विद्युन्मालीमेरोः षोडश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा

विद्युन्माली मेरु पूजे जिनगृह आज सब।
पाऊँ धाम स्वमेरु यही कामना है प्रभो।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

पंचमेरु समुच्चय महाऽर्घ्य

दोहा

महा अर्घ्य अर्पित करूँ पंचमेरु को आज।
पंचभाव को जानकर पाऊँ निजपद राज।।

हरिगीतिका

इस अर्घ्य का शुभभाव जिनवर मात्र मन्द कषाय है।
उत्पन्न कर्मोपाधि से शुभरूप आस्रवभाव है।।
जिस भाव से बँधती प्रकृति शुभरूप तीर्थंकर महा।
वह भाव पर-आश्रित अतः दुखरूप प्रभु तुमने कहा।।

अतएव इस शुभभाव में चैतन्य का वैभव नहीं।
इस पुण्य का फल भी प्रभो! परमार्थ से सुखमय नहीं।।
नवलब्धिमय क्षायिक निधि प्रभु आपकी अनमोल हैं।
उपशम क्षयोपशम भावमय भी अर्घ्य का क्या मोल है।।

प्राप्त कर आश्रय प्रभो अब पारिणामिक भाव का।
दृष्टि में अवलम्ब हो बस एक ज्ञायक भाव का।।
अनमोल निज चैतन्य का मैं आज मूल्यांकन करूँ।
अतीन्द्रिय सुख-ज्ञानमय यह अर्घ्य अब अर्पण करूँ।।

भाव पंचम गृहण से हो पंचमेरु वन्दना।
अर्घ्य अर्पित कर रहा, हो परावर्तन पञ्च ना।।

सोरठा

पंचमेरु जिन चैत्य चैत्यालय वन्दूँ सदा।
आत्मज्ञान का दीप पाऊँ मैं ज्योतिमयी।।

ॐ ह्रीं श्री ढ़ाईद्वीपस्थपंचमेरुस्थित अशीति जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचमेरु समुच्चय जयमाला

दोहा

पंचमेरु के जिन भवन अस्सी पूजे आज।
सम्यग्ज्ञान प्रताप से मिटी राग की खाज।।

मत्तसवैया

चैतन्य चन्द्रिका विमल ज्योति से हे जिनवर! तुम प्रज्ञ हुए।
अज्ञता गई सर्वज्ञ हुए आत्मज्ञ हुए विश्वज्ञ हुए।।
हैं भाव भंगिमाएँ तेरी परिपूर्ण शुद्ध आनंदमयी।
ज्ञानामृत सिन्धु प्रभावमयी ध्रुव शुद्ध बुद्ध त्रैलोक्यजयी।।

पर से हो सदा अप्रभावित अपने से सदा प्रभावित हो।
स्वयमेव अखंड शक्तियों के गुणमणि भूषित स्वप्रकाशित हो।।
हे निजानंद रसलीन सतत तुम सकलज्ञेय के ज्ञायक हो।
शत-शत रवि-शशि द्वारा वंदित त्रैलोक्य-जगत के नायक हो।।

अस्तित्व स्वयं का जान लिया तो शेष जानने से भी क्या।
अतएव प्रभो मैं तुम समान बन जाऊँ प्रतिपल तुमको ध्या।।
यह अपरिसीम सौन्दर्य श्रेष्ठ अपने में सतत् प्रतिष्ठित कर।
अपना विवेक अपने भीतर उसको ही उर में निष्ठित कर।।

उपलब्ध सहज हो जायेगा अनमोल चंद्र निज के भीतर।।
अपने को अगर जान लूँगा जग जानूँगा युगपत सत्वर।।
धर्माराधन का सात्विक फल सहजानंदी शाश्वत पावन।।
जब तक हो अन्तर्दृष्टि नहीं निज ज्ञान न होगा मन भावन।

शिव पथ की पारंपरिक सुविधि पर्याप्त मुक्ति सुख पाने में।।
भव का अभाव कर देती है मैं भूल रहा अनजाने में।
अतएव नाथ पद-पंकज में यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ।।
चहुँगति दुःख शीघ्र विनाश करूँ बस यही भावना भाता हूँ।

ॐ ह्रीं श्री ढ़ाईद्वीपस्थपंचमेरुस्थित अशीति जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वीरछन्द

मोह क्षोभ से रहित आत्म परिणाम धर्म है लूँ पहचान।
सर्व विभावी भाव नष्ट कर अष्टकर्म कर दूँ अवसान।।
पंचमेरु जिनगृह पूजन का मैं भी फल पाऊँ निजराज।
आत्म भावना पूर्वक प्रभु मैं पाऊँगा अब निजपद राज।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

८

पुष्करार्द्ध द्वीपस्थित

मानुषोत्तर जिनालय पूजन

स्थापना

दोहा

योजन सोलह लाख है पुष्कर का विस्तार।
मध्य मानुषोत्तर शिखर चूड़ी के आकार।।

ऊँचा योजन जानिये सतरह सौ इक्कीस।
तथा मूल विस्तार है इक सहस्र बाईस।।

विस्तृत है गिरि मध्य में सात शतक तेईस।
ऊपर में विस्तार है चार शतक चौबीस।।

पूर्वादिक चारों दिशा जिन चैत्यालय चार।
विनय सहित पूजन करूँ मिथ्या तिमिर निवार।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित चतुर्दिक् जिनालयजिन बिम्बसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्। (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित चतुर्दिक जिनालयजिन बिम्बसमूह अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित चतुर्दिक जिनालयजिन बिम्बसमूह अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्। (इति सन्निधिकरणम्)

अष्टक

विजया

मोह की वारुणी पीना छोडो अभी,
ज्ञान जल पीने का अब समय आ गया।
रोग त्रय नाश का ही करो यत्न अब,
आत्म सौन्दर्य उर को अगर भा गया।।
आज अवसर मिला है मुझे अब सहज,
मानुषोत्तर जिनालय की पूजन करूँ।

अकृत्रिम बिम्ब अरहंत को कर नमन,
अकृत्रिम निज चिदानंद में ही रमूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो जन्म जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव अविरति के दूषित हरूँ मैं सभी,
ज्ञान चंदन से मस्तक लूँ अपना सजा।
रोग संसार ज्वर का हरूँ सर्वथा,
दर्शनीवाद्य अपने हृदय में बजा।।
आज अवसर मिला है मुझे अब सहज,
मानुषोत्तर जिनालय की पूजन करूँ।
अकृत्रिम बिम्ब अरहंत को कर नमन,
अकृत्रिम निज चिदानंद में ही रमूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण अनंतों की महिमा मिली है मुझे,
मात्र अक्षत स्वभाव स्वयं का लखूँ।
पूर्ण अक्षय स्वपद मुझको पाना अतः,
मात्र निज आत्म अनुभव के रस को चखूँ।।
आज अवसर मिला है मुझे अब सहज,
मानुषोत्तर जिनालय की पूजन करूँ।
अकृत्रिम बिम्ब अरहंत को कर नमन,
अकृत्रिम निज चिदानंद में ही रमूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान के पुष्प चुन चुन के लाऊँ अभी,
काम की वेदना फिर न होगी कभी।
शील गुण लाख चौरासी होंगे प्रकट,
आत्म महिमा से मंडित ये होंगे सभी।।

आज अवसर मिला है मुझे अब सहज,
मानुषोत्तर जिनालय की पूजन करूँ।
अकृत्रिम बिम्ब अरहंत को कर नमन,
अकृत्रिम निज चिदानंद में ही रमूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म अनुभव के नैवेद्य लूँ ज्ञानमय,
उनका उपयोग कर लो सहज हो अभी।
क्षय करूँ यह क्षुधा व्याधि पल मात्र में,
तृप्त निर्मल स्वभाव मिलेगा तभी।।
आज अवसर मिला है मुझे अब सहज,
मानुषोत्तर जिनालय की पूजन करूँ।
अकृत्रिम बिम्ब अरहंत को कर नमन,
अकृत्रिम निज चिदानंद में ही रमूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह विभ्रम के तम को करूँ शीघ्र क्षय,
ज्ञान का दीप लूँ अपने उर में जला।
अपना उज्वल स्वभाव लखूँ स्वच्छ अब,
जो विभावों की अग्नि में पल पल जला।।
आज अवसर मिला है मुझे अब सहज,
मानुषोत्तर जिनालय की पूजन करूँ।
अकृत्रिम बिम्ब अरहंत को कर नमन,
अकृत्रिम निज चिदानंद में ही रमूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप लूँ ज्ञानमय ध्यान की सहजोपज,
राग ईंधन सदृश मैं जलाऊँ सभी।

आठों कर्मों को भस्म करूँ ध्यान से,
हो के निर्भार निज पद को पाऊँ अभी।।
आज अवसर मिला है मुझे अब सहज,
मानुषोत्तर जिनालय की पूजन करूँ।
अकृत्रिम बिम्ब अरहंत को कर नमन,
अकृत्रिम निज चिदानंद में ही रमूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मोक्ष फल प्राप्त करना है मुझको प्रभो,
ज्ञान का बीज बोऊँ स्वयं भाव से।
मुक्ति मंदिर के ताले खुलेंगे सभी,
मैं जुड़ूँ तो जरा शुद्ध निज भाव से।।
आज अवसर मिला है मुझे अब सहज,
मानुषोत्तर जिनालय की पूजन करूँ।
अकृत्रिम बिम्ब अरहंत को कर नमन,
अकृत्रिम निज चिदानंद में ही रमूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पद अनर्घ्य मिलेगा सुनिश्चित मुझे,
कोई बाधक न होगा कभी एक पल।
अर्घ्य अपने गुणों का बनाऊँ अभी,
प्राप्त करके प्रभो पूर्ण निज ज्ञान बल।।
आज अवसर मिला है मुझे अब सहज,
मानुषोत्तर जिनालय की पूजन करूँ।
अकृत्रिम बिम्ब अरहंत को कर नमन,
अकृत्रिम निज चिदानंद में ही रमूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

दोहा

मानुषोत्तर पूर्व दिशि पूजूँ जिनगृह एक।
अर्घ्य चढ़ाऊँ भाव से हे प्रभु मस्तक टेक।।
निश्चय निजदर्शन कहा जिन प्रतिमा व्यवहार।
जिनदर्शन से हो मुझे निज दर्शन सुखकार।।१।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित पूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मनुजोत्तर दक्षिण दिशा श्री जिन भवन महान।
एक शतक वसु बिम्ब सब रत्नमयी छविमान।।
भाव द्रव्यमय अर्घ्य ले पूजूँ श्री जिनराज।
मैं त्रिकाल वन्दन करूँ हे प्रभु निज हित काज।।२।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित दक्षिणदिक् जिनालयजिन-बिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मनुजोत्तर पश्चिम दिशा जिनमंदिर जिनबिम्ब।
शुद्ध भाव से पूज कर देखूँ निज प्रतिबिम्ब।।
जिनवाणी का सार है स्व-पर भेद विज्ञान।
वन्दूँ पाचों परम पद पाऊँ पद निर्वाण।।३।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित पश्चिमदिक् जिनालयजिन-बिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मनुजोत्तर उत्तर दिशा चैत्यालय जिनधाम।
सहज भाव से मैं करूँ निजपुर में विश्राम।।
वीतराग सर्वज्ञ का मिला विमल उपदेश।
भाव द्रव्य संयम सहित धरूँ दिगम्बर वेश।।४।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित उत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाऽर्घ्य

पद्धटिका

मनुजोत्तर चारों दिशा जान, हैं चार जिनालय अति महान।
है चार शतक बत्तीस बिम्ब, पूजूँ देखूँ निज आत्म बिम्ब।।

जगजीव सभी चैतन्य परम, निश्चयनय से सिद्धों के सम।
पर्याय दृष्टि से दुखी हुए, जिनने छोड़ी वे सुखी हुए।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित चर्तुदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

दुख सहे चिर काल से हे प्रभु! उचरूँ आज।
आया तेरी शरण में, पाऊँ मुक्ति साम्राज्य।।

मानव

रागों की मदिरा पीकर मूर्छित अनादि से चेतन।
प्रभु मोहोदय के कारण दूषित है मेरा यह मन।।

परद्रव्यों के आकर्षण से दुखी हुआ अन्तर्मन।
फिर भी अनंत गुण निधि से है भूषित मेरा चेतन।।

मिथ्यात्व दोष के कारण मैंने चहुँगति दुख पाए।
आनंद अतीन्द्रिय पाने के अवसर सदा गँवाए।।

समकित से दूर रहा मैं निज-पर विवेक ना आया।
क्या मुक्तिमार्ग होता है यह भी कुछ समझ न पाया।।

बस क्रियाकाण्ड में रत हो सौन्दर्य स्वयं का भूला।
चैतन्य सदन के प्राँगण में कभी न पल भर झूला।।

सर्वोत्तम पुण्य उदय से फिर यह मानव तन पाया।
भोगों में ही रत रहकर श्रुत ज्ञान नहीं उर भाया।।

जिनवाणी को वन्दन कर मस्तक पर उसे सजाया।
अंतर में नहीं उतारा पर का बहुमान सुहाया।।

जब सद्गुरु कृपापूर्वक मुझको समझाने आए।
तब नयन खुले प्रभु मेरे दर्शन जिनेन्द्र के पाए।।

जिन सम निजरूप निहारा तो धन्य हो गया जीवन।
निधि भेदज्ञान की पायी जागा विवेक मन भावन।।

अब सम्यग्दर्शन पाया हो गया निहाल निमिष में।
हो गया ज्ञान, दुख ही दुख, था भावमरण के विष में।।

सर्वज्ञ स्वभावी अपने निर्मल स्वरूप को परखा।
त्रैकालिक ध्रुवधामी को अत्यंत निकट से निरखा।।

आनंद अतीन्द्रिय धारा समकित पाते ही पायी।
अमृतरस पान किया प्रभु अबतक तो था विषपायी।।

रुनझुन रुनझुन बजती है पायल स्वभाव परिणति की।
धुक् धुक् धुक् धुक् होती है छाती विभाव परिणति की।।

स्वर्गों के मिले निमंत्रण मैंने उनको ठुकराया।
लोकाग्र शिखर सिंहासन ही हे प्रभु मुझे सुहाया।।

वैराग्य भाव को भेजा संयम का रथ लाने को।
रत्नत्रय वैभव पाया मैंने शिवपुर जाने को।।

परिपूर्ण सिद्धपद पाकर अविनाशी सुख पाएगा।।
सिद्धों के सम वह होगा जो निज को ही ध्याएगा।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करद्वीपमध्ये मानुषोत्तरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पीयूष माधुरी

धर्म जिन पाकर हुआ मैं आज शुद्ध।
अब हुए परिणाम मेरे अति विशुद्ध।।
पुण्य पाप विभाव मुझ से है विरुद्ध।
सिद्ध सम हूँ मैं स्वयं ही पूर्ण शुद्ध।।

दोहा

मानुषोत्तर जिनभवन मैं पूजूँ धर ध्यान।
तत्त्वस्वरूप विचार कर करूँ आत्म कल्याण।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

६

श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित बावन जिनालय पूजन

स्थापना

चान्द्रायण

अष्टम द्वीप श्री नन्दीश्वर जाइये।
चारों दिशि के बावन जिनगृह ध्याइये।।
एक शतक त्रेसठ सुकोटि योजन महा।
विस्तृत लाख चुरासी इक इक दिशि महा।।

पूरब दक्षिण पश्चिम उत्तर हैं सुवन।
तेरह तेरह चारों दिशि बावन भवन।।
प्रकृति स्वयं श्रृंगारित करती द्वीप को।
रवि शशि वन्दन करते नाथ महीप को।।

अष्टान्हिका पर्व में आते इन्द्र सुर।
अष्ट दिवस पूजा करते समवेत स्वर।।
अवतंसादिक देव यहाँ रहते सदा।
जिनप्रभु की जय ध्वनि गुंजित करते सदा।।

मनुज लोक आगे हम जा सकते नहीं।
अत: भाव से पूजन करते हैं यहीं।।
हम अब पूजें अष्टम द्वीप महान को।
अष्ट द्रव्य प्रासुक ले विश्व प्रधान को।।

विनय भाव से यहीं हृदय में थापकर।
प्रतिगृह इकशत वसु बिम्बों का जाप कर।।
पाँच सहस छह सौ सोलह जिनबिम्ब सब।
पूजन करके निरखे निज प्रतिबिम्ब अब।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्ब अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्) ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्ब अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ:ठ: (इति स्थापनम्) ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्ब अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति (सन्निधिकरणम्)

अष्टक

पीयूष राशि

वासना का जल भरा है अंतरंग।
कामनाएँ सहस्रों हैं नाथ संग।।
किस तरह हो जन्म मृत्यु अभाव प्रभु।
जागरूक न हो सका निज भाव विभु।।
द्वीप नंदीश्वर जिनालय पूज लूँ।
मुक्तिनभ की विमल उज्ज्वल दूज लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भावना चंदन सहज कैसे मिले।
ज्ञान अम्बुज पूर्णत: कैसे खिले।।
ताप भव-ज्वर का हटे कैसे प्रभो।
मोह भ्रम-तम नष्ट हो कैसे विभो।।
द्वीप नंदीश्वर जिनालय पूज लूँ।
मुक्तिनभ की विमल उज्ज्वल दूज लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शालि अक्षत श्रम बिना कैसे उगें।।
वासना के मार्ग से कैसे चिगें।
स्व-पद अक्षय का पता कैसे लगे।।
मोह-भ्रम अज्ञान प्रभु कैसे भगे।
द्वीप नंदीश्वर जिनालय पूज लूँ।।
मुक्ति नभ की विमल उज्ज्वल दूज लूँ।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम पीड़ा से सतत व्याकुल रहा।
वासनाओं से सदा आकुल रहा।।
कामशर की वेदना जाती नहीं।

भावना निष्काम उर आती नहीं।।
द्वीप नंदीश्वर जिनालय पूज लूँ।
मुक्तिनभ की विमल उज्ज्वल दूज लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

विष भरे नैवेद्य खाता रहा हूँ।
पुनः मर मर यहीं आता रहा हूँ।।
शुद्ध अनुभव चरु कहीं मिलते नहीं।
क्षुधा रूप पिशाच तो हिलते नहीं।।
द्वीप नंदीश्वर जिनालय पूज लूँ।
मुक्तिनभ की विमल उज्ज्वल दूज लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह तम छाया हुआ है अंतरंग।
इसलिए मिथ्यात्व का है सदा संग।।
ज्ञान की लौ हे प्रभो जलती नहीं।
भव भ्रमण की वेदना खलती नहीं।।
द्वीप नंदीश्वर जिनालय पूज लूँ।
मुक्तिनभ की विमल उज्ज्वल दूज लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म ज्वाला जलाती प्रति-पल प्रभो।
वज्र पौरुष भी हुआ मिथ्या विभो।।
अष्ट कर्म विनाश का बल दो मुझे।
कर्म विरहित दशा दो उज्ज्वल मुझे।।
द्वीप नंदीश्वर जिनालय पूज लूँ।
मुक्तिनभ की विमल उज्ज्वल दूज लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

कंटकों से मुक्ति पथ भरपूर है।
हृदय मेरा मोह मद में चूर है।।
मोक्षफल की प्राप्ति ही सुखदायिनी।
ज्ञान की सौदामिनी दुखहारिणी।।
द्वीप नंदीश्वर जिनालय पूज लूँ।
मुक्तिनभ की विमल उज्ज्वल दूज लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अभी तक तो हैं विभावी अर्घ्य सब।
स्वयं की हो बोधि उत्तम नाथ अब।।
पद अनर्घ्य अपूर्व मेरे पास में।
जी न पाया आत्म के विश्वास में।।
मिल गए आनंद ईश्वर ज्ञान से।
आत्म सुख होता स्वयं के भान से।।
द्वीप नंदीश्वर जिनालय पूज लूँ।
मुक्तिनभ की विमल उज्ज्वल दूज लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाऽर्घ्य

सोरठा

नन्दीश्वर जिनधाम बावन पूजूँ भाव से।
इन्द्रों जैसा भाव उर धर अर्घ्य चढ़ाऊँ मैं।।

विजात (तुम्हीं हो माता पिता तुम्ही हो)

ये कर्म आठों मुझे फंसाकर इतर निगोदों में भेजते हैं।
कषाय थोड़ी सी मंद करके ये स्वर्ग सुख भी सहजते हैं।।
विराग जगता है जब कभी भी विभाव सारे आ घेरते हैं।
ये राग की रागिनी सुनाकर स्वभाव मेरा विनाशते हैं।।

समय न समकित का पाने देते ये रंग मिथ्यात्व ही पोतते हैं।
स्वभाव को जागने न देते मुझे तो सोते ही जोतते हैं।।
विभाव मुझमें कभी न आते ये मेरे ऊपर ही तैरते हैं।
कृपालु सद्गुरु मुझे जगाने बड़े प्रयत्नों से टेरते हैं।।

मैं जाग जाता हूँ नींद से जब तो मुझको कोई न रोकते हैं।
प्रयाण करता हूँ अपने पथ पर तो मुझको कोई न टोकते हैं।।
लडूँगा उनसे जो मुझको भव-दुख भरे समुद्रों में भेजते हैं।
अतः सुरासुर प्रसन्न होकर चकित हो मुझको ही देखते हैं।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

क्षमा आदि दश धर्म धर आप हुए जिनराज।
संयम श्रेणी पर चढे पा निजपुर साम्राज्य।।

विधाता

क्षमा की भावना लाऊँ क्रोध पर नाथ जय पाऊँ।
हृदय में साम्यभावों की सरित का नीर मैं लाऊँ।।
विनय का भाव उर लाऊँ नहीं अभिमान हो मन में।
निरभिमानी विनयपति बन रहूँ निज आत्म-उपवन में।।

सरलता पूर्ण ऋजुता हो, न माया भाव हो स्वामी।
कपट के भाव सब चूरूँ वरूँ शुद्धात्मा नामी।।
शौच निर्दोष हो मन में लोभ का भाव सब क्षय हो।
परम शुचिमय बनूँ स्वामी प्रभो सर्वत्र जय जय हो।।

कषायें चार क्षय करके बनूँ अकषाय गुण स्वामी।
साम्यभावी सहज जीवन बनाऊँ भव्य निज नामी।।
पंच इन्द्रिय विषयसुख का राग उर में न हो किंचित।
तत्त्व का भाव सम्यक् हो ध्येय निजधर्म हो निश्चित।।

ज्ञान दर्शनमयी जीवन बिताऊँ नाथ मैं अपना।
पूर्व में भोग जो भोगे न आए उनका भी सपना।।
भोग वांछा भविष्यत की न जागे नाथ निज उर में।
बनूँ मैं निस्पृही भगवन रहूँ मैं शुद्ध निजपुर में।।

विगत जीवन को भूलूँ मैं पाप के भाव क्षय कर लूँ।
स्वयं की शक्ति जागृत कर सकल संसार जय कर लूँ।।
शुद्ध भावों में रस आए साम्यभावी बनूँ स्वामी।
मोह अरू क्षोभ को जीतूँ बनूँ त्रैलोक्य पति नामी।।

रच क्रोधादि आस्रव को न आने दूँ कभी भीतर।
शुद्ध संवर हृदय में हो सजाऊँ शुद्ध अंतर।।
यहाँ से ही करूँ प्रारंभ अपना ध्येय शिव सुख का।
मोक्ष का मार्ग पाऊँ मैं नाम जिसमें नहीं दुख का।।

वीतरागी स्वभावों का सदा ही मैं करूँ आदर।
राग का कण न हो उरमें सफलता प्राप्त हो सत्वर।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्थित द्विपंचाशत् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

नन्दीश्वर जिनचैत्य की पूजन का उद्देश्य।
भव्य भावना प्रकट हो यही विनय परमेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

ऊंचे ऊंचे शिखरों वाला रे, यह तीरथ हमारा।
तीरथ हमारा हमें लागे प्यारा।।टेक।।

श्री जिनवर से भेंट करावें, जग को मुक्ति मार्ग दिखावें।।
मोह का नाश करावे रे, यह तीरथ हमारा।।१।।

शुद्धातम से प्रीति लगावे, जड़-चेतन को भिन्न बतावे।।
भेद-विज्ञान करावे रे, यह तीरथ हमारा।।२।।

१०

नंदीश्वर द्वीप की

पूर्वदिशा में स्थित त्रयोदश जिनालय पूजन

स्थापना

वीरछन्द

पूर्व दिशा नंदीश्वर दिव्य त्रयोदश जिन चैत्यालय भव्य।
सर्व अकृत्रिम कंचनमय हैं स्वर्ण कलश नव नूतन नव्य।।
इक अंजनगिरि कृष्ण वर्ण है चारों दधिमुख श्वेत ललाम।
आठों रतिकर लाल वर्ण हैं इस प्रकार तेरह जिनधाम।।

रत्न वापिकाएँ जल पूरित एक लाख योजन जलमय।
दधिमुख मध्य वापिका गिरि दो कोणों पर रतिकर जय-जय।।
चंपक आम्र अशोक सप्तच्छद चारों वन सुषमा सुविशाल।
महा मनोहर दृश्यावलि है मोहित सुर होते तत्काल।।

एक शतक वसु रत्न बिम्ब प्रत्येक जिनालय रहे विराज।
पूजन करके आत्मध्यान के बलसे पाऊँ सुख साम्राज्य।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्ब अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वानम्)

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्ब अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्ब अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (इतिसन्निधिकरणम्)

अष्टक

दिग्वधू

रागादि भाव-हिंसा तज कर बनूँ अहिंसक।
जन्मादि रोग नाशूँ नर भाव करूँ मैं सार्थक।।
पूरब दिशा नंदीश्वर मैं हर्ष सहित जाऊँ।
सिद्धायतन त्रयोदश मैं भव सहित ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधादि भाव क्षयकर उर क्षमा गुण सजाऊँ।
दर्शनविशुद्धि पाकर निज वाद्य नित बजाऊँ।।
पूरब दिशा नंदीश्वर मैं हर्ष सहित जाऊँ।
सिद्धायतन त्रयोदश मैं भाव सहित ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मानादि दुष्ट जीतूँ उर विनय भाव लाऊँ।
सिद्धत्व प्राप्ति के हित शुद्धात्मतत्त्व ध्याऊँ।।
पूरब दिशा नंदीश्वर मैं हर्ष सहित जाऊँ।
सिद्धायतन त्रयोदश मैं भाव सहित ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मायादि शल्य जीतूँ ऋजुता हृदय सजाऊँ।
दुर्दान्त काम नाशूँ परिपूर्ण शील पाऊँ।।
पूरब दिशा नंदीश्वर मैं हर्ष सहित जाऊँ।
सिद्धायतन त्रयोदश मैं भाव सहित ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

लोभादि वासना का संपूर्ण नाश कर दूँ।
प्रभु शौच भावना का जग में प्रकाश कर दूँ।।
पूरब दिशा नंदीश्वर मैं हर्ष सहित जाऊँ।
सिद्धायतन त्रयोदश मैं भाव सहित ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हिंसादि पाँच पापों का अंत अब करूँगा।
निज ज्ञान-दीप लेकर अज्ञानतम हरूँगा।।
पूरब दिशा नंदीश्वर मैं हर्ष सहित जाऊँ।
सिद्धायतन त्रयोदश मैं भाव सहित ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वादश सुभावनामय वैराग्य भाव लाऊँ।
ध्यानाग्नि बीच अब तो कर्मादि सब जलाऊँ।।
पूरब दिशा नंदीश्वर मैं हर्ष सहित जाऊँ।
सिद्धायतन त्रयोदश मैं भाव सहित ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

व्रत समिति गुप्ति पालूँ चारित्र उर सजाऊँ।
अविलंब मोक्षफल का आनंद नित उठाऊँ।।
पूरब दिशा नंदीश्वर मैं हर्ष सहित जाऊँ।
सिद्धायतन त्रयोदश मैं भाव सहित ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

चारित्र त्रयोदश विधि का अर्घ्य मैं बनाऊँ।
पदवी अनर्घ्य अविकल अविकार नाथ पाऊँ।।
जिनमार्ग श्रेष्ठ पाकर उन्मार्ग छोड़ दूँ मैं।
अपने स्वभाव से ही निज प्रीत जोड़ दूँ मैं।।
पूरब दिशा नंदीश्वर मैं हर्ष सहित जाऊँ।
सिद्धायतन त्रयोदश मैं भाव सहित ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

पूर्व दिशा में स्थित त्रयोदश जिनालयों को अर्घ्य

सोरठा

पूर्व दिशा जिनबिम्ब नंदीश्वर के पूजिए।
अन्तर्मुख जिनबिम्ब चौदह सौ अरु चार हैं।।

सरसी

जल फलादि वसु द्रव्य अर्घ्य मैं लाया हूँ जिनदेव।
जन्म मरण दुख नाश करूँगा निज बल से स्वयमेव।।

नंदीश्वर की पूर्व दिशा जिन चैत्यालय ध्याऊँ।
अंजनगिरि के जिन-मंदिर को शीष झुका आऊँ।।
चौरासी सहस्त्र योजन ऊँचा अंजनगिरि जान।
गोलाकार ढोल सम मनहर महिमा लूँ पहचान।।१।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित अंजनगिरिजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अंजनगिरि की चारों दिशि में एक एक वापी।
एक लाख योजन जल पूरित की महिमा व्यापी।।
पूर्व दिशा नंदावापी के दधिमुख पर्वत श्वेत।
भाव पूर्वक अर्घ्य चढ़ाऊँ स्व पर ज्ञान के हेत।।
ऊँचा सहस्त्र योजन है यह दधिमुख गोलाकार।
इकशतवसु प्रतिमा सिद्धों सम प्रति मंदिर अविकार।।२।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित नंदावापीकामध्यदधिमुखपर्वतस्थित-जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदावापी की ईशान दिशा सुन्दर पर्वत।
रतिकर सुन्दर नाम जिनालय पर्वत पर शोभित।।
रतिकर पर्वत एक सहस्त्र योजन ऊँचा है जान।
लालवर्ण का मणि-माणिक से खचित स्वर्णमय जान।।
इन्द्र-शची सुर सुरांगनाएँ नाचे भाव विभोर।
कोटि कोटि मृदुवाद्यों की ध्वनि गूँज रही चहूँ ओर।।३।।

ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थितनंदावापीईशानकोणे रतिकरपर्वतस्थितजिनालय जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वापी नंदा आग्नेय दिशि रतिकर पर्वत लाल।
भाव सहित मैं अर्घ्य चढ़ाऊँ चैत्यालय सुविशाल।।
सप्त तत्त्व का निर्णय करके करूँ आत्म कल्याण।
निजस्वरूप को निरख-निरख कर पाऊँ पद निर्वाण।।
निज स्वरूप साधना लीन वे ही सच्चे अनगार।
भाव-द्रव्य दोनों संवारते महिमा अपरंपार।।४।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थितनंदावापीआग्नेयकोणे रतिकरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दक्षिण वापी नंदवती में दधिमुख पर्वत है।
स्वर्णमयी जिनवर चैत्यालय अनुपम शाश्वत है।।
सतत निरंतर प्रतिपल प्रतिक्षण निज को ही ध्याऊँ।
आत्म ध्यान फल महा मोक्षफल हे प्रभु मैं पाऊँ।।
उपादान का मात्र नाम ले जिन-पूजन तजता।
वह सिद्धत्व नहीं पा सकता मात्र भ्रान्ति भजता।।५।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वद्वीपस्य पूर्वदिशास्थितनंदवतीवापीमध्यदधिमुखपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदवती वापी निर्मल जलमय शोभाशाली।
आग्नेय में रतिकर पर्वत गृह सुषमाशाली।।
महाध्वजाएँ लघु ध्वजा सह नभ में लहराती।
स्वर्ण कलश की दिव्य प्रभाएँ नभ से बतियाती।।
उपादान का आश्रय लेकर जो निमित्त जाने।
जागरूक हो वह सिद्धत्व स्वपद पाकर माने।।६।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थितनंदवतीवापी आग्नेयकोणे रतिकर-पर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदवती वापी नैऋत्य कोण में पर्वत जान।
रतिकर नाम बड़ा सुन्दर है जिनगृह इक छविमान।।
जो भी ज्ञानी हुए और जो वर्तमान होते।
जो भविष्य में होंगे वे सब मार्ग एक जोते।।
इन्द्रियज्ञान हेय मैं जानूँ ज्ञान अतीन्द्रिय श्रेष्ठ।
साम्य भाव धारूँ अंतर में राग-द्वेष तज नेष्ठ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित नंदवतीवापीनैऋत्यकोणे रतिकर-पर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदोत्तरा सुवापी पश्चिम दधिमुख श्वेत विशाल।
रत्न-बिम्ब शोभित चैत्यालय पूजूँ प्रभु तत्काल।।
नारी तन को देख न जागे विषयेच्छा का भाव।
मैं भगवान समान रहूँ प्रभु! हो निष्काम स्वभाव।।

अपरिग्रही अनिच्छुक बनकर धारूँ जिन मुनिवेश।
अट्ठाईस मूलगुण पालूँ लुंचूँ सिर के केश।।८।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित नंदोत्तरावापीमध्य दधिमुखपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम नंदोत्तरावापि नैऋत्य कोण सुन्दर।
स्वर्णमयी श्री जिनचैत्यालय अति मनोज्ञ मनहर।।
''मत्थएणवंदामि'' जिनेश्वर को जो भी करते।
जिनस्वरूप लख निजस्वरूप की महिमा को लखते।।
निर्मल आत्म स्वभाव लखूँ मैं मोह भाव क्षय कर।
सर्व कषाय कलंक मिटाऊँ अविरति को जय कर।।९।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित नंदोत्तरावापीनैऋत्यकोणे रतिकरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वापी नंदोत्तरा सुपश्चिम दिशि वायव्य सुकोण।
रतिकर स्वर्णमयी चैत्यालय की शोभा ज्यों भौन।।
विमल भावना द्वादश भाऊँ करूँ आत्म चिन्तन।
भव तन भोग विराग जगाऊँ नाशूँ भ्रम तम घन।।
ज्ञान कुंज में चलो सुचेतन विविध गंध जानो।
मति श्रुति अवधि मन:पर्यय कैवल्यमयी मानो।।१०।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित नंदोत्तरावापीवायव्यकोणे रतिकरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर दिशि वापिका सुनंदीघोषा महा विशाल।
दधिमुख पर्वत का चैत्यालय है भव्यों की ढाल।।
सम्यक् श्रद्धा का बल पाकर पाऊँ सम्यक् ज्ञान।
निश्चय संयम भाव जगाऊँ करूँ कर्म अवसान।।
है ज्ञायक स्वभाव पर जिनकी दृष्टि वही है संत।
निज स्वरूप अवलबंन लेकर होंते हैं भगवंत।।११।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित नंदीघोषावापीमध्य दधिमुखपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वापी नंदीघोषा के वायव्य कोण में एक।
मंदिर स्वर्णिम रतिकर पावन रक्त वर्ण का एक।।
जिन-दर्शन कर निज-दर्शन का जो करते पुरुषार्थ।
वही जीव कुछ क्षण में पा लेते निश्चय भूतार्थ।।
एक मात्र ज्ञायक स्वभाव ही मेरा शाश्वत है।
ध्रौव्य स्वभावी शुद्ध आत्मा में होना रत है।।१२।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित नंदीघोषावापीईशानकोणे रतिकरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वापी नंदीघोषा के ईशान कोण में भव्य।
स्वर्णमयी रतिकर चैत्यालय पूजूँ निज दृष्टव्य।।
तन्मय होकर जिसने अपना निज स्वभाव ध्याया।
उसने ही संसार नाशकर शाश्वत सुख पाया।।
श्री जिनवर की दिव्यध्वनि जो अंतरंग धरते।
वे ही प्राणी मोक्षमार्ग पाते भव-दुख हरते।।१३।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित नंदीघोषावापीवायव्यकोणे रतिकरपर्वतस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाऽर्घ्य

चान्द्रायण

गुण अनंत का चेतन में सद्भाव है।
दर्शन ज्ञान वीर्य सुख आत्म स्वभाव है।।
चिरमिथ्यात्व मोह का दुखद प्रभाव है।
अनंतानुबंधी का उर में भाव है।।

इसीलिए समकित का अभी अभाव है।
अप्रत्याख्यानावरणी का घाव है।।
एकदेश संयम का अत: अभाव है।
अविरति दुष्टा का ही पूर्ण प्रभाव है।।

प्रत्याख्यानावरणी का उर भाव है।
चिर प्रमाद का तब तक दुष्ट प्रभाव है।।

पूर्णदेशसंयम का अत: अभाव है।
जब चारों कषाय का ही उर भाव है।।
तीनों योगों का भी पूर्ण प्रभाव है।
कर्मबंध पाचों कारकों का भाव है।।

जब तक इन पांचों प्रत्यय का भाव है।
तब तक पर ममत्व का उर में भाव है।।
जागृत होने का पुरुषार्थ न जागृत।
सोचो कैसे होगा शिव सुख शाश्वत।।

चलो सिद्धपुर की बस्ती में ही चलें।।
संज्ञ असंज्ञ आस्रव भावों को दलें।
अविनाशी शाश्वत सुख का सद्भाव है।
दर्शन ज्ञान वीर्य सुख आत्म स्वभाव है।।

सोरठा

महिमा अपरम्पार, है नंदीश्वर द्वीप की।
महाऽर्घ्य सुखकार विनयसहित अर्पण करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थितत्रयोदशजिनालयजिनाम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वीरछन्द

ध्रुव चैतन्य धातु निर्मित है ज्ञान शरीरी द्रव्य प्रधान।
किन्तु भूल से बंद कर्म पिंजरे में है यह दुखी महान।।
कैसे छूटे भव पिंजरे से किया न मैंने आत्म विचार।
नहीं तत्त्वनिर्णय का भी पाया जीवन में यह आधार।।

कैसे हो उद्धार मार्ग छुटकारे का कैसे पाए?।
कैसे स्व-पर विवेक जगाएँ कैसे अपने में आए।।
श्री गुरु समझा समझा हारे किन्तु न मैं भव से हारा।
श्री गुरु ने समकित औषधि दी किन्तु न मैंने स्वीकारा।।

निकट भव्य हूँ फिर भी मेरे लक्षण दिखे अभव्य समान।
निज दर्शन करते ही होगा निकट भव्य आचरण महान।।
श्री जिनवर ने हमें बताया काललब्धि पुरुषार्थाधीन।
निज पुरुषार्थ जगा विवेक से भेद-ज्ञान कर ज्ञान प्रवीण।।

इतना करते ही मैं पथिक बनूँगा शिवपथ का तत्काल।
रत्नत्रय का मुकुट सजाते ही होऊँगा परम विशाल।।
सिद्धपुरी के द्वार खुलेंगे शोभित वन्दनवारों से।
निजानंद प्रतिपल बरसेगा मुक्तिवधू मनुहारों से।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पूर्वदिशास्थित त्रयोदश जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

भवन त्रयोदश पूजकर करूँ आत्म कल्याण।
निज शुद्धात्म स्वभाव का करूँ प्रभो मैं ज्ञान।।
पूर्व दिशा के बिम्बों को वंदन करता आज।
ध्रुव-शाश्वत-सुखमय मिले मुझको निजपद राज।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

आयो आयो रे हमारो बड़ो भाग कि हम आए पूजन को।
पूजन को प्रभु दर्शन को, पावन प्रभु-पद पर्शन को।।टेक।।

जिनवर की अर्न्तमुख मुद्रा आतम दर्श कराती।
मोह महामल प्रक्षालन कर शुद्ध स्वरूप दिखाती।।१।।

भव्य अकृत्रिम चैत्यालय की जग में शोभा भारी।
मंगल ध्वज ले सुरपति आए शोभा जिसकी न्यारी।।२।।

अनेकान्तमय वस्तु समझ जिन शासन ध्वज लहरावें।
स्याद्वाद शैली से प्रभुवर मुक्ति मार्ग समझावें।।३।।

११

नंदीश्वर द्वीप की
दक्षिण दिशा में स्थित त्रयोदश जिनालय पूजन

स्थापना

चान्द्रायण

दक्षिण दिशि नंदीश्वर दिव्य त्रयोदशम्।
रत्न बिम्ब से शोभित स्वर्ण जिनालयम्।।
पूर्व दिशा सम शेष सर्व रचना शुभम्।
इन्द्र सुरों द्वारा वन्दित दक्षिणेश्वरम्।।

सत्यम् शिवम् सुन्दरम् महा मनोहरम्।
हृदय विराजित करूँ तुम्हें जगदीश्वरम्।।
विनय सहित मैं भाव द्रव्य पूजन करूँ।
भरत क्षेत्र से ही सादर वन्दन करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्ब अत्र अवतर अवतर संवौषट्। (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्ब अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। (इति स्थापनं)

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्ब अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (इति सन्निधिकरणम्)

अष्टक

राधिका

शुद्धात्म ज्ञान का निर्मल जल प्रभु लाऊँ।
जन्मादिक त्रिविध व्याधियाँ सर्व नशाऊँ।।
पूजूँ दक्षिण दिशि नंदीश्वर चैत्यालय।
प्रभु कृपा शीघ्र पाऊँगा मैं सिद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म भावना चंदन हे प्रभु लाऊँ।
संसारताप ज्वर पूरा ही विनशाऊँ।।
पूजूँ दक्षिण दिशि नंदीश्वर चैत्यालय।
प्रभु कृपा शीघ्र पाऊँगा मैं सिद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म भावना अक्षत हृदय सजाऊँ।
अक्षय पद पाऊँ फिर न लौट कर आऊँ।।
पूजूँ दक्षिण दिशि नंदीश्वर चैत्यालय।
प्रभु कृपा शीघ्र पाऊँगा मैं सिद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म कुसुम सिद्धत्व सुरभिमय लाऊँ।
कामादि पीर क्षय करके शील सजाऊँ।।
पूजूँ दक्षिण दिशि नंदीश्वर चैत्यालय।
प्रभु कृपा शीघ्र पाऊँगा मैं सिद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म सुचरु निज अनुभव रसमय लाऊँ।
जठराग्नि बुझाऊँ वेदनीय विनशाऊँ।।
पूजूँ दक्षिण दिशि नंदीश्वर चैत्यालय।
प्रभु कृपा शीघ्र पाऊँगा मैं सिद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म दीप ज्ञानात्मक शीघ्र जलाऊँ।
मोहान्धकार क्षय करूँ परम सुख पाऊँ।।
पूजूँ दक्षिण दिशि नंदीश्वर चैत्यालय।
प्रभु कृपा शीघ्र पाऊँगा मैं सिद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालय- जिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म धर्म की धूप ध्यानमय लाऊँ।
कर्माग्नि ज्वाल को मैं सम्पूर्ण बुझाऊँ।।
पूजूँ दक्षिण दिशि नंदीश्वर चैत्यालय।
प्रभु कृपा शीघ्र, पाऊँगा मैं सिद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म धर्म के फल अपूर्व मैं लाऊँ।
परिपूर्ण आत्म बल से शिवसुख फल पाऊँ।।
पूजूँ दक्षिण दिशि नंदीश्वर चैत्यालय।
प्रभु कृपा शीघ्र पाऊँगा मैं सिद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म भाव के अर्घ्य अपूर्व बनाऊँ।
अपना अनर्घ्य पद शाश्वत अब प्रगटाऊँ।।
ज्ञानाब्धि तरंगों के स्वामी अविनश्वर।
आनंद ईश्वर तुम ही हो जगदीश्वर।।
पूजूँ दक्षिण दिशि नंदीश्वर चैत्यालय।
प्रभु कृपा शीघ्र पाऊँगा मैं सिद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

दक्षिण दिशा संबंधी त्रयोदश जिनालयों को अर्घ्य

सोरठा

दक्षिण दिशि जिनबिम्ब नंदीश्वर के पूजिए।
अन्तर्मुख जिनबिम्ब चौदह सौ अरु चार हैं।।

राधिका

नंदीश्वर दक्षिण दिशा जिनालय ध्याऊँ।
अंजनगिरि पर्वत पर जा शीष झुकाऊँ।।
रत्निम जिन प्रतिमाओं को सादर वन्दूँ।

स्वर्णिम जिन चैत्यालय सविनय अभिनन्दूँ।।
सम्यग्दर्शन के पावन वाद्य बजाऊँ।
शुद्धात्म भावना अपने हृदय सजाऊँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित अंजनगिरिजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अंजनगिरि पूरब अरजा वापी मनहर।
दधिमुख पर्वत पर श्रेष्ठ जिनालय सुन्दर।।
वापी की चारों दिशा सुवन चउ शोभित।
स्वर्गों के इन्द्रादिक सुर सब ही मोहित।।
सम्यग्दर्शन के पावन वाद्य बजाऊँ।
शुद्धात्म भावना अपने हृदय सजाऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित अरजावापीकामध्य-दधिमुखपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अरजावापी ईशान कोण अति प्यारा।
रतिकर पर्वत है महा मनोहर न्यारा।।
जिन चैत्यालय इस पर शोभित स्वर्णिम है।
इसमें इकशत वसु प्रतिमाएँ रत्निम हैं।।
सम्यग्दर्शन के पावन वाद्य बजाऊँ।
शुद्धात्म भावना अपने हृदय सजाऊँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित अरजावापीईशानकोणे रतिकरपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अरजा वापी आग्नेय कोण रतिकर है।
इस पर्वत के ऊपर मंदिर सुन्दर है।।
मैं मोह-राग-द्वेषादि भाव क्षय कर लूँ।
पूर्णत्व भावना भाते ही दुख हर लूँ।।
सम्यग्दर्शन के पावन वाद्य बजाऊँ।
शुद्धात्म भावना अपने हृदय सजाऊँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित अरजावापीआग्नेयकोणे रतिकरपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अंजनगिरि दक्षिण दिशि विरजा वापी में।
दधिमुख वन्दूँ क्या है आपाधापी में।।
स्वर्णिम जिन चैत्यालय का नित अभिनंदन।
रत्निम जिन-प्रतिमा एक शतक वसु वंदन।।
सम्यग्दर्शन के पावन वाद्य बजाऊँ।
शुद्धात्म भावना अपने हृदय सजाऊँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित विरजावापीमध्य-दधिमुखपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विरजावापी आग्नेय कोण मैं जाऊँ।
रतिकर पर्वत का भव्य जिनालय ध्याऊँ।।
अवसर पाया है आज बड़ी मुश्किल से।
जुड़ जाऊँ प्रभु अपने स्वभाव में दिल से।।
सम्यग्दर्शन के पावन वाद्य बजाऊँ।
शुद्धात्म भावना अपने हृदय सजाऊँ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित विरजावापीआग्नेयकोणे रतिकरपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नैऋत्य कोण विरजा वापी का पर्वत।
दूजा जिन चैत्यालय मैं पूजूँ जिनवर।।
भवरंग मुझे अब तनिक न शोभा देगा।
निजरंग अभी उर में शिव सुख भर देगा।।
सम्यग्दर्शन के पावन वाद्य बजाऊँ।
शुद्धात्म भावना अपने हृदय सजाऊँ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित विरजावापीनैऋत्यकोणे रतिकरपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अंजनगिरि पश्चिम दिशा अशोका वापी।
दधिमुख पर्वत जिनगृह की छवि उर व्यापी।।
क्रोधाग्नि बुझाने नाथ शरण में आया।
अब क्षमा भाव की महिमा उर में लाया।।

सम्यग्दर्शन के पावन वाद्य बजाऊँ।
शुद्धात्म भावना अपने हृदय सजाऊँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित अशोकावापीमध्य-दधिमुखपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

है वापि अशोका दिशि नैऋत्य सुपावन।
पहिले रतिकर पर चैत्यालय मन भावन।।
मैं मान कषाय मिटाने को प्रभु आया।
उर विनय भावना अल्प सजाकर लाया।।
सम्यग्दर्शन के पावन वाद्य बजाऊँ।
शुद्धात्म भावना अपने हृदय सजाऊँ।।९।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित अशोकावापीनैऋत्यकोणे रतिकरपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

है दिव्य अशोका वापि कोण वायव्य।
दूजे रतिकर पर स्वर्ण जिनालय भव्य।।
मायादि भाव तज सादर जिनगृह वन्दूँ।
ऋजुता धन पाकर जिन प्रभु को अभिनन्दूँ।।
सम्यग्दर्शन के पावन वाद्य बजाऊँ।
शुद्धात्म भावना अपने हृदय सजाऊँ।।१०।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित अशोकावापीवायव्यकोणे रतिकरपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अंजनगिरि दक्षिण दिशा सु दधिमुख पर्वत।
है मध्य वीतशोका सुवापि गृह शाश्वत।।
लोभादि विकारी भाव पूर्णतः नाशूँ।
उर शौच धर्म युत उज्ज्वल ज्ञान प्रकाशूँ।।
सम्यग्दर्शन के पावन वाद्य बजाऊँ।
शुद्धात्म भावना अपने हृदय सजाऊँ।।११।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित वीतशोकावापीमध्य-दधिमुखपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

है निकट वीतशोका के सुन्दर पर्वत।
वायव्य कोण में महा मनोहर शोभित।।
पहिला रतिकर जिन चैत्यालय सुखकारा।
चारों कषाय नाशक स्वभाव मन हारा।।
सम्यग्दर्शन के पावन वाद्य बजाऊँ।
शुद्धात्म भावना अपने हृदय सजाऊँ।।१२।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित वीतशोकावापीवायव्य कोणे रतिकरपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिशि वापि वीतशोका ईशान सुजाऊँ।
रतिकर पर्वत की प्रदक्षिणा कर आऊँ।।
जिन चैत्यालय अकृत्रिम प्रतिदिन वन्दूँ।
रत्निम प्रतिमाएँ भाव सहित अभिनन्दूँ।
जिन धर्म प्राप्त कर भी जो है अज्ञानी।।
है होनहार खोटी उनकी दुख दानी।
सम्यग्दर्शन के पावन वाद्य बजाऊँ।
शुद्धात्म भावना अपने हृदय सजाऊँ।।१३।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित वीतशोकावापीईशान कोणे रतिकरपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाऽर्घ्य

ताटक

निज शुद्धात्म तत्त्व के भीतर रवि कैवल्य स्वज्ञान निरख।
स्व-पर प्रकाशक निज स्वभाव को चाहे जैसे अरे परख।।
भ्रान्तमार्ग से हो निर्भ्रान्त अनात्म तत्त्व से त्याग ममत्व।
निज स्वरूप का विश्लेषण कर मुझे प्राप्त होगा सम्यक्त्व।।
अनहदनाद गुंजा लूँ उरमें जगा भावना शुद्ध अलख।
एक त्रिकाली ध्रुव स्वरूप को प्रतिपल प्रतिक्षण निरख निरख।।

दोहा

महा अर्घ्य अर्पण करूँ दक्षिण दिशि जिनधाम।
नन्दीश्वर जिन पूजकर निज में करूँ विराम।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

मत्तसवैया

मौसम समकित का आया है निज-अनुभव रस से घट भर लूँ।
वसु कर्म बादरी नष्ट करूँ क्षय मिथ्यातम के पट कर लूँ।।
यह समय चक्र रुकता न कभी चाहे कितना ही यत्न करूँ।
यदि मोक्ष मुझे पाना है तो ध्रुव की धुन से ही लग्न करूँ।।

भायी फिर पर की गंध अगर तो फिर निगोद जाना होगा।
भायी है यदि चैतन्य गंध तो मुक्ति गोद पाना होगा।।
दोनों ही मार्ग उपस्थित हैं केवल इक को चुनना होगा।
कोई भी साथ न जाएगा मुझको निज पट बुनना होगा।।

तोडूँ विभाव के चक्कर को अपने स्वभाव में आ जाऊँ।
शिवसुख की आकांक्षा है तो अपने स्वरूप में रम जाऊँ।।
क्रोधादि क्रोध में होता है मोहादि मोह में होता है।
उपयोग सदा उपयोगों में ही व्यापक होकर रहता है।।

होता है जब पुण्योपयोग तब जिय पुण्यी कहलाता है।
होता है जब पापोपयोग तब जिय पापी कहलाता है।।
होता है जब शुद्धोपयोग प्राणी धर्मी कहलाता है।
मैं प्रगट करूँ शुद्धोपयोग जो ज्ञायक में रम जाता है।।

यदि सम्यग्ज्ञान हृदय में हो तो फिर आस्रव रुक जाता है।
आस्रव का रुकना ही संवर सर्वज्ञ कथन में आता है।।
यह संवर भाव प्रकट हो प्रभु इसलिए भाव से की पूजन।
नंदीश्वर दक्षिण दिशि तेरह चैत्यालय पूजे मन भावन।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य दक्षिणदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

पूजन करके हे प्रभो करूँ स्वयं का भान।
सम्यग्दर्शन प्राप्त कर पाऊँ सम्यक् ज्ञान।।

नंदीश्वर दक्षिण दिशा भवन त्रयोदश पूज।
तत्क्षण ही पायी प्रभो आत्मज्ञान की दूज।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

शुद्धात्मा का श्रद्धान होगा निज आत्मा तब भगवान होगा।
निज में निज, पर में पर भासक, सम्यग्ज्ञान होगा।।टेक।।

नव तत्त्वों में छिपी हुई जो ज्योति उसे प्रगटायेंगे।
पर्यायों से पार त्रिकाली ध्रुव को लक्ष्य बनायेंगे।।
शुद्ध चिदानन्द रसपान होगा निज आत्मा तब भगवान होगा।।१।।

निज चैतन्य महा-हिमगिरि से परणति-घन टकरायेंगे।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द रसमय अमृत-जल बरसायेंगे।।
मोह महामल प्रक्षाल होगा निज आत्मा तब भगवान होगा।।२।।

आत्मा के उपवन में रत्नत्रय पुष्प खिलायेंगे।
स्वानुभूति के सौरभ से निज नन्दन वन महकायेंगे।।
संयम से सुरभित उद्यान होगा निज आत्मा तब भगवान होगा।।३।।

आओ रे आओ रे ज्ञानानन्द की डगरिया।
तुम आओ रे आओ, गुण गाओ रे गाओ।
चेतन रसिया आनन्द रसिया।।टेक।।

बड़ा अचम्भा होता है, क्यों अपने से अनजान रे।
पर्यायों के पार देख ले, आप स्वयं भगवान रे।।१।।

दर्शन-ज्ञान स्वभाव में, नहीं ज्ञेय का लेश रे।
निज में निज को जान कर तजो ज्ञेय का वेश रे।।२।।

मैं ज्ञायक मैं ज्ञान हूँ, मैं ध्याता मैं ध्येय रे।
ध्यान-ध्येय में लीन हो, निज ही निज का ज्ञेय हैं।।३।।

१२

नन्दीश्वर द्वीप की
पश्चिम दिशा में स्थित त्रयोदश जिनालय पूजन

स्थापना

सार (जोगीरासा)

नंदीश्वर पश्चिम दिशि तेरह जिन चैत्यालय ध्याऊँ।
अंजनगिरि दधिमुख रतिकर पर्वत की महिमा गाऊँ।।
शोभाशाली चारों वन लख तन मन से हर्षाऊँ।
रत्न वापिका जल से अपने तन को शुद्ध बनाऊँ।।

प्रासुक द्रव्य सजाऊँ वसु विधि पूजा पाठ रचाऊँ।
श्रेष्ठ भावना द्वादश भाऊँ उर वैराग्य सजाऊँ।।
भव तन भोग उदास बनूँ प्रभु निज की सुरुचि जगाऊँ।
तुव दर्शन करते ही स्वामी चिर मिथ्यात्व भगाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्ब अत्र अवतर अवतर संवौषट्। (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्ब अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। (इति स्थापनं)

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्ब अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (इति सन्निधिकरणम्)

अष्टक

मानव

अनुपम स्वभाव शाश्वत का निर्मल जल हे प्रभु लाऊँ।
जन्मादि रोग त्रय क्षय हित अपने स्वभाव में जाऊँ।।
नंदीश्वर पश्चिम दिशि के पूजूँ तेरह चैत्यालय।
निर्वाण सौख्य पाने को ध्याऊँ मैं निज शुद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल स्वभाव चंदन का मस्तक पर तिलक लगाऊँ।
संसार ताप क्षय करने मिथ्या भ्रम त्वरित भगाऊँ।।
नंदीश्वर पश्चिम दिशि के पूजूँ तेरह चैत्यालय।
निर्वाण सौख्य पाने को ध्याऊँ मैं निज शुद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय स्वभाव है मेरा उसको ही मैं प्रगटाऊँ।
अक्षय अखंड पद शाश्वत हे नाथ शीघ्र ही पाऊँ।।
नंदीश्वर पश्चिम दिशि के पूजूँ तेरह चैत्यालय।
निर्वाण सौख्य पाने को ध्याऊँ मैं निज शुद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम भावना बल से ज्वर काम पूर्ण विनशाऊँ।
निधि महाशील की पाकर सिद्धों सम वैभव पाऊँ।।
नंदीश्वर पश्चिम दिशि के पूजूँ तेरह चैत्यालय।
निर्वाण सौख्य पाने को ध्याऊँ मैं निज शुद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अनुभव रस के पावन नैवेद्य नाथ मैं लाऊँ।
क्षय क्षुधा वेदना करके सिद्धत्व पूर्ण प्रगटाऊँ।।
नंदीश्वर पश्चिम दिशि के पूजूँ तेरह चैत्यालय।
निर्वाण सौख्य पाने को ध्याऊँ मैं निज शुद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज ज्ञान दीप ज्योतिर्मय जगमग जगमग मैं लाऊँ।
मोहान्धकार विध्वंसक शुद्धात्म आश्रय पाऊँ।।
नंदीश्वर पश्चिम दिशि के पूजूँ तेरह चैत्यालय।
निर्वाण सौख्य पाने को ध्याऊँ मैं निज शुद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्रुवधामी ध्यान धूप ले कर्मों का काष्ठ जलाऊँ।
पद नित्य निरंजन पाकर नित निजानंद रस पाऊँ।
नंदीश्वर पश्चिम दिशि के पूजूँ तेरह चैत्यालय।
निर्वाण सौख्य पाने को ध्याऊँ मैं निज शुद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अपने स्वभाव साधन से मैं महामोक्ष फल लाऊँ।
शिवपुर में सिद्धशिला पर आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।।
नंदीश्वर पश्चिम दिशि के पूजूँ तेरह चैत्यालय।
निर्वाण सौख्य पाने को ध्याऊँ मैं निज शुद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल निर्मल भावों के मैं उत्तम अर्घ्य बनाऊँ।।
शाश्वत अनर्घ्य पद पाऊँ हृदतंत्री तार बजाऊँ।
नंदीश्वर पश्चिम दिशि के पूजूँ तेरह चैत्यालय।
निर्वाण सौख्य पाने को ध्याऊँ मैं निज शुद्धालय।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

पश्चिमदिशा संबंधी त्रयोदश जिनालयों को अर्घ्य

दोहा

नंदीश्वर पश्चिमदिशा भव्य त्रयोदश धाम।
पूजन कर पाऊँ प्रभो! ध्रुव निजपुर विश्राम।।

चौपाई

नंदीश्वर पश्चिमदिशि जाऊँ, कृष्ण वर्ण अंजनगिरि ध्याऊँ।
जिनचैत्यालय स्वर्णमयी है, त्रिभुवनपूजित शोकजयी है।।
तीर्थंकर भी निज को ध्याते, महामोक्ष फल तत्क्षण पाते।
आत्मसाधना कर सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्ति का कर लूँ उद्यम।।१।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित अंजनगिरिजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अंजनगिरि पूरवदिशि वापी, विजया लख योजन जल व्यापी।
दधिमुख पर्वत शिखर सुशोभित, जिनचैत्यालय पर सब मोहित।।
जैसे हैं अरहंत महा विभु, द्रव्यदृष्टि से उन सम हूँ प्रभु।
आत्म साधना कर सर्वोत्तम, मुक्ति प्राप्ति का कर लूँ उद्यम।।२।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित विजयावापीमध्यदधिमुखपर्वत जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

विजया के ईशान कोण में मिलता है आनंद मौन में।
रतिकर चैत्यालय अभिरामी, पूजूँ जिनवर त्रिभुवन नामी।।
चंचल मन पर प्रभु जय पाऊँ, अनहद गीत स्वयं के गाऊँ।
आत्म साधना कर सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्ति का कर लूँ उद्यम।।३।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित विजयावापीईशान-कोणेरतिकरपर्वत जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

आग्नेय दिशि विजया वापी, जिनगुण महिमा त्रिभुवन व्यापी।
रतिकर पर्वत कर जिन आलय, मानो अष्टम भू सिद्धालय।।
आत्मज्ञान की गरिमा पाऊँ, निज स्वरूप में ही रम जाऊँ।
आत्म साधना कर सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्ति का कर लूँ उद्यम।।४।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित विजयावापीआग्नेय-कोणेरतिकरपर्वत जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अंजनगिरि के दक्षिण वापी, नाम वैजयन्ती जल व्यापी।
ठीक मध्य में पर्वत दधिमुख, पूजूँ जिनगृह हो आत्मोन्मुख।।
धर्म वृद्धि आशीर्वाद पा, शिवसुख पाऊँ निज स्वरूप ध्या।
आत्म साधना कर सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्ति का कर लूँ उद्यम।।५।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित वैजयंतीवापीमध्यदधिमुखपर्वत जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वापी वैजयंती रतिकर है, आग्रेय दिशि में गिरिवर है।
भव्य जिनालय भव दुखहारी, भव्यजनों को शिव सुखकारी।।
ज्ञान गगन से मेघ बरसता, जो अभव्य है वही तरसता।
आत्म साधना कर सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्ति का कर लूँ उद्यम।।६।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित वैजयंतीवापीमध्य-आग्नेयकोणेरतिकरपर्वत जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वापी वैजयंती महिमामय, है नैऋत्य कोण जिन आलय।
रतिकर पर्वत पर विशाल है, इस पर्वत का रंग लाल है।।
आत्म द्रव्य निश्चय अभेद है, कथन मात्र व्यवहार भेद है।
आत्म साधना कर सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्ति का कर लूँ उद्यम।।७।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित वैजयंतीवापीनैऋत्यकोणे रतिकरपर्वत जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

भव्य जयंती वापी अनुपम, जो अंजनगिरि के है पश्चिम।
ठीक मध्य में दधिमुख पर्वत, शाश्वत जिनचैत्यालय स्वर्णिम।।
मैं अनंत शक्तियों सहित हूँ गुण पर्याय भेद विरहित हूँ।
आत्म साधना कर सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्ति का कर लूँ उद्यम।।८।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित जयंतीवापीमध्यदधिमुखपर्वत जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वापी सजल जयंती ऊपर, है नैऋत्य कोण गिरि रतिकर।
जिन चैत्यालय अति मनभावन, परम पवित्र ध्यान का साधन।।
वृद्धिंगत जिनमार्ग मुक्ति का, पाया है पथ शाश्वत सुख का।
आत्म साधना कर सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्ति का कर लूँ उद्यम।।९।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित जयंतीवापीका-नैऋत्यकोणेरतिकरपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

कोण जयंती वापी पर है, दिशि वायव्य एक जिनगृह है।
रतिकर पर्वत दिव्य विमल है, वापी में जल अति निर्मल है।।
पूजूँ रत्निम जिन प्रतिमाएँ, लहराती हैं उच्च ध्वजाएँ।
आत्म साधनाकर सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्ति का कर लूँ उद्यम।।१०।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित जयंतीवापीवायव्यकोणे रतिकरपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

अंजनगिरि वापी उत्तर में, अपराजिता बस गई उर में।
दधिमुखपर्वत मध्य जिनालय, शत योजन है विस्तृत आलय।।
मुक्ति प्राप्ति की बेला आई, अरहंतों की महिमा गाई।
आत्म साधना कर सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्ति का कर लूँ उद्यम।।११।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित अपराजितावापीमध्यदधिमुखपर्वत जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वापी अपराजिता मनोहर, दिशि वायव्य कोण में रतिकर।
जिनगृह कलश ध्वजाओं सज्जित, स्वर्गों की शोभा है लज्जित।।
सिद्ध शिला सिंहासन पाऊँ, फिर न लौटकर भव में आऊँ।
आत्म साधना है सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्ति का होवे उद्यम।।१२।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित अपराजितावापी वायव्यकोणे रतिकरपर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

वापी अपराजिता भव्य है, कैसे देखे जो अभव्य है।
है ईशान दिशा में रतिकर, श्री जिन चैत्यालय भव भयहर।।
मुक्ति वधू का पा आमंत्रण, निज स्वभाव ध्याऊँगा क्षण क्षण।
आत्म साधना है सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्ति का होवे उद्यम।।१३।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित अपराजितावापी ईशानकोणेरतिकर-पर्वतजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

महाऽर्घ्य

दोहा

पश्चिम दिशि जिनगृह जजूँ परम भक्ति से नाथ।
महा अर्घ्य अर्पित करूँ तजूँ न तुम पद साथ।।

वीरछन्द

यद्यपि मेरा ही अपना अक्षय वैभव अनर्घ्य जिनराज।
किन्तु भरोसा हुआ न अब तक भव भव भटक रहा हूँ नाथ।।

पर में ही सुख मान रहा हूँ वही दिखा मुझको अनमोल।
किन्तु तुम्हारे दिव्य वचन से जान लिया अब अपना मोल।।

अत: समर्पित है चरणों में भक्ति-भावमय अर्घ्य महा।
प्राप्त करूँ पदवी अनर्घ्य आनंद अतीन्द्रिय बरस रहा।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

नंदीश्वर पश्चिम दिशा तेरह भवन महान।
विनय सहित वन्दन करूँ करूँ आत्म कल्याण।।

ताटंक

निज-चिन्तन ही परम सुरक्षा कवच हमारा है अपना।
पर-चिन्तन तो महादुखममयी साता का झूठा सपना।।
निज-चिन्तन से परम ज्ञान का कोषालय खुल जाता है।
निजचिन्तन से महा मोक्ष का मार्ग स्वत: मिल जाता है।।

निज-चिन्तन की महिमा पाता ज्ञानी ज्ञान भाव द्वारा।
निज-चिन्तन पुरुषार्थ शक्ति से कट जाती है भव कारा।।
निज-स्वरूप का चिन्तन करके वस्तु स्वरूप जान अपना।
है एकत्व-विभक्त शाश्वत ज्ञानमयी आत्मा अपना।।

कोई रोक नहीं पाएगा निज चिन्तन से मुझे कभी।
निज चिन्तन तो आत्माश्रित है नहीं पराश्रित रहा कभी।।
आज मिला है निज चिन्तन का अवसर अनायास मुझको।
यही शीघ्र देने वाला है शाश्वत सुख निवास मुझको।।

निज-चिन्तन की श्रेष्ठ सुविधि से अपना निज पद पाऊँगा।
उर उत्कीर्ण शब्द अंकित कर शीघ्र मोक्ष में जाऊँगा।।
भाव-द्रव्यलिंगी मुनिवर बन निज स्वभाव का साधन लूँ।
एक मात्र चिद्रूप शुद्ध का संयममय अनुशासन लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य पश्चिमदिशास्थित त्रयोदशजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा

पूजे जिनगृह आज पश्चिम दिशि नंदीश्वरम्।
पाऊँ निज पद राज यही भावना है परम।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

कर्मोदय क्षय क्षयोपशम उपशम से निरपेक्ष।
सहज शुद्ध निर्मल अहो ! ज्ञायकभाव अखेद।।

उत्तर

श्रेष्ठ
जिनाल
त्रयोदश
अकृत्रि
ॐ ह्रीं श्र
अत्र अवतर
ॐ ह्रीं श्र
अत्र तिष्ठ ति
ॐ ह्रीं श्र
अत्र मम स

ध्रुव स्व
जन्म-मृ
द्वीप न
नित्य
ॐ ह्रीं श्री
जन्म जरा-मृत
शुद्ध
हे जिन
द्वीप न
नित्य
ॐ ह्रीं श्री
संसारतापविना

समुच्चय महाऽर्घ्य

(पंचमेरु नंदीश्वर विधान)

दोहा

पंचमेरु अस्सी भवन पूजे मैंने आज।
नंदीश्वर बावन भवन त्रिभुवन के सिरताज।।
सहसचतुर्दश दोशतक छप्पन श्रीजिनबिम्ब।
पूजन कर हे नाथ अब निरखूँ निज प्रतिबिम्ब।।

वीरछन्द

मैं परतंत्र रहा प्रभु अब तक राग भाव को कर स्वीकार।
यदि स्वतंत्रता पाना है तो निज ज्ञायक का लूँ आधार।।
पाप-पुण्य पर भाव नहीं मैं यह करना होगा स्वीकार।
एक मात्र चैतन्य द्रव्य परद्रव्य-भिन्न मैं हूँ अविकार।।

देह चर्म से ढकी हुई मम हाड़ माँस का पिंजर है।
राध रक्त दुर्गंध मलभरी रोग सर्प का यह घर है।।
काल दाढ़ में खेल रहा हूँ पुण्य पाप के खेल विचित्र।
पल भर का भी पता नहीं है नहीं जानता आत्म पवित्र।।

आव जाव से कभी न मिलता प्रभु अवकाश मुझे पलभर।
पंच परावर्तन भी मुझको कभी नहीं लगता दुखकर।।
हुआ प्राप्त थोड़ा जिन-श्रुत तो उलझा वाद विवादों में।
समकित बिन ही संयम धरता फँस झूठे जयनादों में।।

ज्ञेय लुब्धता से हे जिनवर! किया ज्ञान निज का अपमान।
कहाँ ज्ञान पाऊँगा निज का कैसे पाऊँगा निर्वाण।।
क्रूर मोह की माया में फँस निज से रहा सदा अनजान।
अब तो प्रभु उपाय बतलादो दुख का मैं करदूँ अवसान।।

परम दयानिधि नाथ जिनेश्वर प्रगटे मुझको सम्यग्ज्ञान।
निजस्वभाव साधन का बल ले करूँ आत्मा का कल्याण।।

पंचमेरु नंदीश्वर के इकशत बत्तीस श्रेष्ठ जिनधाम।
महा अर्घ्य अर्पित करता हूँ अब निज में पाऊँ विश्राम।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपस्य जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये समुच्चय महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय महाजयमाला

(पंचमेरु नंदीश्वर विधान)

जोगीरासा

पंचमेरु के अस्सी जिनगृह पूजे हैं मनभावन।
भक्तिभाव से जिन चैत्यालय सर्व किए हैं वन्दन।।
इनमें आठसहस छहसौ चालीस श्रीजिन-बिम्ब।
जिन प्रतिमा के दर्शन करके देखा निज प्रतिबिम्ब।।

अष्टमद्वीप श्री नंदीश्वर चैत्यालय हैं बावन।।
चारों दिशि में पूजन करके सुख पाया मनभावन।।
इन सब में हैं पांचसहस छहसौ सोलहजिन प्रतिमा।
परम विनय से पूजन करके देखूँ अन्तर अपना।।

आठ दिवस का मंगल अवसर आया है अति पावन।
अष्ट अंगमय समकित पाऊँ है स्वामी मनभावन।।
पंचमेरु नंदीश्वर जिनगृह एक शतक बत्तीस।
इन सबमें चौदह सहस्र दो सौ छप्पन जिन ईश।।

तुम ही त्रिभुवनपति ईश्वर हो त्रिलोकाग्र के शीष।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर मंगलमय जगदीश।।
अब मैं अपनी व्यथा सुनाऊँ सुनो ध्यान से नाथ।
तुव चरणों का ध्यान न भाया भाया परका साथ।।

विजया

मोह के जाल में हम उलझते रहे।
प्रभु निगोदों के चक्कर लगाते रहें।।

मोह से दूर जो भी रहे जीव वे।
मुक्ति की मंजिले नित्य पाते रहे।।
राग के राग में फँसके उत्साह से।
आस्रवों की ही दुनिया बसाते रहे।।
बंध के कष्ट हम क्षय नहीं कर सके।
चारों गतियों में हम तिलमिलाते रहे।।

पाप कर्मों से जब जब हुई कुछ घृणा।
पुण्य भावों का संचय किया मोह से।।
तत्त्व-अभ्यास के बिन बिताया समय।
मिथ्यादर्शन की जड़ को जमाते रहे।।

निज को जाना न निज पर को जाना न पर।
बुद्धि विपरीत भावों में पलती रही।।
शुद्ध सम्यक्त्व की मिलती कैसे पवन।
वृक्ष मिथ्यात्व के ही उगाते रहे।।

पाया जब भी कभी वक्त सम्यक्त्व का।
उसको खोते रहे स्वर्ग के लोभ में।।
दुष्ट मिथ्यात्व से बंध माना नहीं।
मोह की मोहिनी में फसाते रहे।।

तत्त्वनिर्णय से कोसों रहे दूर हम।
तत्त्व-अभ्यास हमको सुहाया नहीं।।
पंचपापों से श्रृंगार हमने किया।
शुद्ध संयम से कतरा के जाते रहे।।

शुद्ध चैतन्य की भावना भायी ना।
मन में वैराग्य की कैसे आती पवन।।

जागा वैराग्य शमशान वाला हृदय।
तो उसे भी हम तत्क्षण भगाते रहे।।

विषय भोग वांछा का विष ही पिया।
ज्ञान अमृत हमें रंच भाया नहीं।।
हम कषायों का रस पी मगन हो गए।
छहों लेश्याएँ उर में सजाते रहे।।

वीतरागी की महिमा तो जानी नहीं।
हमने पूजा उन्हें भोग सुख के लिए।।
धर्म जिन को न समझा तनिक आज तक।
वीतरागी को रागी बनाते रहे।।

रागी द्वेषी कुदेवों की पूजा रची।
हमने उनको जिनेश्वर से बढ़कर लखा।।
नित सदा लालसा खोटी करते रहे।
हम महापाप के तरु उगाते रहे।।

न्याय-अन्याय हमने न जाना कभी।
भक्ष्याभक्ष्य भखा, बिन विवेकी रहे।।
दान भी दे रहे मान या लोभ वश।
अपने दुष्कर्म हम सब छिपाते रहे।।

धर्म के क्षेत्र में भी किए पाप बहु।
मायाचारी से धन का उपार्जन किया।।
सेवा करके कुपथ गामियों को रिझा।
खुद भी डूबे उन्हें भी डूबाते रहे।।

महिमा मिथ्यात्व की देख आश्चर्य है।
ये उबरने न देता है इस जीव को।।

जो भी ज्ञानी हुए वे इसे दूर कर।
शुद्ध निर्वाण सुख पूर्ण पाते रहे।।

मैं भी पाऊँ प्रभो मोह को नष्ट कर।
शुद्ध चैतन्य वैभव है दृष्टित हुआ।।
भेद-विज्ञान द्वारा ही मिलता है यह।
जिसके सर्वज्ञ भी गीत गाते रहे।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु नंदीश्वरद्वीपस्य जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा

पूजे पांचों मेरु नंदीश्वर जिनधाम सब।
करूँ आत्मकल्याण जिन-आगम अनुसार चल।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

प्रभूजी अब न भटकेंगे संसार में...........
अब अपनी ......हो ऽऽऽ... अब अपनी खबर हमें हो गई।।टेक।।

भूल रहे थे निज वैभव को पर को अपना माना।
विष सम पंचेन्द्रिय विषयों में ही सुख हमने जाना।।
पर से भिन्न लखा निज चेतन मुक्ति निश्चित होगी।।१।।

महापुण्य से हे जिनवर अब तेरा दर्शन पाया।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द रस पीने को चित ललचाया।।
निर्विकल्प निज अनुभूति से मुक्ति निश्चित होगी।।२।।

निज को ही जानें, पहिचानें, निज में ही रम जायें।
द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित हो, शाश्वत शिवपद पायें।।
रत्नत्रय निधियाँ प्रगटायें, मुक्ति निश्चित होगी।।३।।

१४

ग्यारहवें कुण्डलवर द्वीप स्थित

श्री कुण्डलगिरि जिनालय पूजन

स्थापना

वीरछन्द

है योजन विस्तार द्वीप कुण्डलवर का जिन आगम साख।
एक खरब अरु चार अरब पच्चासी कोटि छिहत्तर लाख।।
एकादशम द्वीप कुण्डल के मध्य श्रेष्ठ पर्वत कुण्डल।
इस पर चारों दिशि के चार जिनालय पूजूँ परम विमल।।

दोहा

चार शतक बत्तीस जिन कुण्डलगिरि गृह चार।
भाव सहित पूजन करूँ लूँ जिन छवि उर धार।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालय-जिनप्रतिमासमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्। (इत्याहवाननम्)

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालय-जिनप्रतिमासमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। (इति स्थापनं)

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालय-जिनप्रतिमासमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (इति सन्निधिकरणम्)

अष्टक

मानव

चेतनकुमार चैतन्यामृत पीने को आतुर है।
तुम सम बनने को यह अब सम्पूर्णतया चातुर है।।
कुण्डलगिरि जिन-गृह पूजूँ आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।
अपने स्वभाव की महिमा के ही मैं गीत गुँजाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वाध्यायी बनकर मुझको तत्त्वों का करना निर्णय।

दुर्गन्ध विषय भोगों की जयकर हो जाऊँ निर्भय।।
कुण्डलगिरि जिन-गृह पूजूँ आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।
अपने स्वभाव की महिमा के ही मैं गीत गुँजाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

ले भेद-ज्ञान की निधियाँ अक्षीण ज्ञान आया है।
पुरुषार्थ पूर्वक मैंने सम्यग्दर्शन पाया है।।
कुण्डलगिरि जिन-गृह पूजूँ आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।
अपने स्वभाव की महिमा के ही मैं गीत गुँजाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम स्वभावी चेतन का करता हूँ अभिनंदन।
मन्मथपर विजयी होकर करता स्वरूप निज वन्दन।।
कुण्डलगिरि जिन-गृह पूजूँ आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।
अपने स्वभाव की महिमा के ही मैं गीत गुँजाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आनंद अतीन्द्रिय रसमय चरु का बहुमान हृदय में।
निज अनुभव रस धारा पी रहता हूँ आत्म निलय में।।
कुण्डलगिरि जिन-गृह पूजूँ आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।
अपने स्वभाव की महिमा के ही मैं गीत गुँजाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शिवपथ पर दीप जलाया है दर्शन ज्ञान स्वभावी।
जयकर मिथ्यापरिणति को बनता परद्रव्य अभावी।।
कुण्डलगिरि जिन-गृह पूजूँ आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।
अपने स्वभाव की महिमा के ही मैं गीत गुँजाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालयजिन-बिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दृढ़ अप्रमत्त होने का करना है रुचि पूर्वक श्रम।
क्षायिक श्रेणी चढ़ने में हो जाऊँ मैं अब सक्षम।।
कुण्डलगिरि जिन-गृह पूजूँ आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।
अपने स्वभाव की महिमा के ही मैं गीत गुँजाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

यदि उपशम श्रेणी चढ़ने लायक निर्बल पौरुष हो।
गिर कर भी त्वरित संभलकर अपने स्वरूप में लय हो।।
कुण्डलगिरि जिन-गृह पूजूँ आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।
अपने स्वभाव की महिमा के ही मैं गीत गुँजाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु क्षायिक श्रेणी चढ़कर मैं बारहवे में आऊँ।
झट मोह शत्रु को क्षयकर उर यथाख्यात प्रगटाऊँ।।
थल त्रयोदशम पा लूँ मैं अपने अनंत गुण प्रगटा।
ये पुण्य-पाप के सारे ताने बाने को विघटा।।
कुण्डलगिरि जिन-गृह पूजूँ आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।
अपने स्वभाव की महिमा के ही मैं गीत गुँजाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

शिखरिणी

श्री कुण्डलगिरि की पूर्व दिशि को वंदन करूँ।
जिनालय शाश्वत की महिमा का वर्णन करूँ।।
बिम्ब इकशतवसु के चरण युग में अर्पण करूँ।
द्रव्य प्रासुक लेकर विनय से मैं पूजन करूँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिशा दक्षिण जिनगृह श्री कुण्डलगिरि भव्य है।
जिनालय शाश्वत इक पूर्णत: सुन्दर दिव्य है।।
बिम्ब इकशतवसु के चरण युग में अर्पण करूँ।
द्रव्य प्रासुक लेकर विनय से मैं पूजन करूँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितदक्षिणचतुर्दिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री कुण्डलगिरि की दिशा पश्चिम में जिन-भवन।
श्री जिनवर राजे अकृत्रिम शाश्वत को नमन।।
बिम्ब इकशतवसु के चरण युग में अर्पण करूँ।
द्रव्य प्रासुक लेकर विनय से मैं पूजन करूँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपश्चिमचतुर्दिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री कुण्डलगिरि पर दिशा उत्तर में जिन-भवन।
इन्द्र सुर हर्षित हो सदा करते हैं नित नमन।।
बिम्ब इकशतवसु के चरण युग में अर्पण करूँ।
द्रव्य प्रासुक लेकर विनय से मैं पूजन करूँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितउत्तरचतुर्दिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्णार्घ्य

कुण्डल

शुभ अवसर पाय आप रूप चित्त लाऊँ।
कुण्डलवर द्वीप चार जिनमंदिर ध्याऊँ।।
जलफलादि पूर्ण अर्घ्य भाव से चढ़ाऊँ।
भेद-ज्ञान वैभव प्रभु आप कृपा पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालयजिन-बिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाऽर्घ्य

गीतिका

ध्यान कर परमात्मा का विनय पूर्वक कर नमन।
उसी क्षण मिथ्यात्व भ्रम के गरल का होगा वमन।।
ध्यान पर-परमात्मा का स्वर्ग सातादाय है।
ध्यान निज परमात्मा का परम शिव सुखदाय है।।

तत्त्व के अभ्यास से ही भेद-ज्ञान महान हो।
भेद-ज्ञान महान से सम्यक्त्व श्रेष्ठ प्रधान हो।।
आज निज परमात्मा का ज्ञान हो सर्वोत्तम।
यही तो है मुक्ति सुख दाता परम परमोत्तम।।

महाअर्घ्य करूँ समर्पित विनय भाव जगा हृदय।
आत्मा की साधना कर प्राप्त कर लूँ निज निलय।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालयजिन-बिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

जिन पूजन के भाव से होता अति आनन्द।
रत्नत्रय की प्राप्ति हो भोगूँ परमानन्द।।

विधाता

हृदय सम्यक्त्व होते ही प्रचुर आनंद आता है।
यही संयम का रथ पावन हमारे पास लाता है।।
बिना सम्यक्त्व के अणुभर नहीं कल्याण होता है।
नहीं पाता है जो इसको वही तो आत्म-घाता है।।

पूर्व के बंध हो तो भी सहज हो जाते हैं निर्बल।
नर्क की वेदना में भी निजातम ही सुहाता है।।
नर्क सप्तम का हो यदि बंध तो पहिले का रह जाता।
वहाँ भी शान्त रहता है जीव निज गीत गाता है।।

बाह्य में तो असाता है मगर उर में भरा आनंद।
ज्ञानका दीप है उर में यही सन्मार्ग दाता है।।
नहीं है स्वर्ग में भी रस विभावों से नहीं मतलब।
जो अपने आत्मा को ही सदा सर्वत्र ध्याता है।।

मनुज भव जब वो पाता है प्राप्त करता है रत्नत्रय।
संयमी साधु होता है मुक्ति के पथ पे आता है।।
कर्म के बंध हरता है घातिया कर्म क्षय करता।
सहज निज शक्ति के द्वारा दशा अरहंत पाता है।।

यही है मुक्ति-पद दाता यही है सिद्धपद दाता।
इसे जो प्राप्त करता है वही शिव सौख्य पाता है।।
अत: सम्यक्त्व पाने का करूँ प्रभु यत्न हे जिनवर।
यही भव पार ले जाता यही शिव सौख्य दाता है।।

ॐ ह्रीं श्री कुण्डलगिरिस्थितचतुर्दिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुण्डलिया

वन्दूँ कुण्डल द्वीप के जिन चैत्यालय चार।
निजस्वरूप का लक्ष्य ले हो जाऊँ भव पार।।
हो जाऊँ भवपार भावना है यह मेरी।
भाव-द्रव्य-संयम धारण में करूँ न देरी।।
चार शतक बत्तीस बिम्ब जिनवर अभिनन्दूँ।
मुक्ति-प्राप्ति-हित सब सिद्धों को सविनय वन्दूँ।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

हे जिनपूजन के रसिक, शोधो श्रुत का सार।
मोक्ष महल में आइये, प्रिय चैतन्य कुमार।।

१५

तेरहवें द्वीप रुचकवर स्थित
श्री रुचकगिरि जिनालय पूजन

स्थापना

वीरछन्द

त्रयोदशम है द्वीप रुचकवर मध्य रुचकगिरि वलयाकार।
स्वर्णमयी अति सुन्दर पर्वत चार दिशा जिनमंदिर चार।।
इन्द्रादिक सुर हर्षित आते पूजन करते विविध प्रकार।
सुर किन्नर गंधर्व यक्ष जिनप्रभु का करते जय जयकार।।

सोलह खरब सतत्तर अरब बहत्तर कोटि सुसोलह लाख।
है योजन विस्तार द्वीप का मध्यलोक जिनआगम साख।।
मन-वच-काय त्रियोग पूर्वक अष्ट द्रव्य का ले आधार।
श्री जिनवर की पूजन करके उर में होता हर्ष अपार।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपूर्वपश्चिमदक्षिणउत्तरचतुर्दिक् जिनालय-जिनबिम्बसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्। (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपूर्वपश्चिमदक्षिणउत्तरचतुर्दिक् जिनालय-जिनबिम्बसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ:। (इति स्थापनं)

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपूर्वपश्चिमदक्षिणउत्तरचतुर्दिक् जिनालय-जिनबिम्बसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (इति सन्निधिकरणम्)

अष्टक

विधाता

प्राप्त सम्यक्त्वजल करके मोक्ष के मार्ग पर आऊँ।
स्वरूपाचरण पाकर के प्रभो संयम का रथ लाऊँ।।
रुचकवर द्वीप तेरहवाँ रुचकगिरि मध्य में पर्वत।
जिनालय चार मैं पूजूँ अकृत्रिम स्वर्णमय शाश्वत।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपूर्वपश्चिमदक्षिणउत्तरचतुर्दिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो जन्म जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्ण संयम दशा पाने महाव्रत मंत्र अपनाऊँ।
बनूँ मैं भावलिंगी मुनि गंध आत्मीय ध्रुव पाऊँ।।
रुचकवर द्वीप तेरहवाँ रुचक गिरि मध्य में पर्वत।
जिनालय चार मैं पूजूँ अकृत्रिम स्वर्णमय शाश्वत।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

बाह्य में द्रव्यलिंगी हो करूँ मैं मूलगुण पालन।
रहूँ वन पर्वतों में ही भाव अक्षत हो मन भावन।।
रुचकवर द्वीप तेरहवाँ रुचकगिरि मध्य में पर्वत।
जिनालय चार मैं पूजूँ अकृत्रिम स्वर्णमय शाश्वत।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान झूला सतत झूलूँ कभी सप्तम कभी षष्टम।
साधना पुष्प पाऊँ मैं श्रमण बनकर करूँ नित श्रम।।
रुचकवर द्वीप तेरहवाँ रुचकगिरि मध्य में पर्वत।
जिनालय चार मैं पूजूँ अकृत्रिम स्वर्णमय शाश्वत।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सुचरु अनुभवमयी लाऊँ सदा से हूँ निराहारी।
निजाश्रित भावना भाऊँ बनूँ मैं पूर्ण गुणधारी।।
रुचकवर द्वीप तेरहवाँ रुचकगिरि मध्य में पर्वत।
जिनालय चार मैं पूजूँ अकृत्रिम स्वर्णमय शाश्वत।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपूर्वदक्षिणपश्चिमउत्तरचतुर्दिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान आलोक भ्रम तमहर भेद-विज्ञान से लाऊँ।
देखकर ज्ञान दीपावलि दशा अरहंत सम पाऊँ।।
रुचकवर द्वीप तेरहवाँ रुचकगिरि मध्य में पर्वत।
जिनालय चार मैं पूजूँ अकृत्रिम स्वर्णमय शाश्वत।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपूर्वपश्चिमदक्षिणउत्तरचतुर्दिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप लूँ शुक्लध्यानी निज प्रकृति वसुकर्म क्षय के हित।
निरंजन नित्य पद पाऊँ द्रव्य मेरा है ध्रुव शाश्वत।।
रुचकवर द्वीप तेरहवाँ रुचकगिरि मध्य में पर्वत।
जिनालय चार मैं पूजूँ अकृत्रिम स्वर्णमय शाश्वत।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपूर्वपश्चिमदक्षिणउत्तरचतुर्दिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षपक श्रेणी चढूँगा मैं अयोगी पद सजाऊँगा।
नयातीती बनूँगा मैं मोक्षफल शीघ्र पाऊँगा।।
रुचकवर द्वीप तेरहवाँ रुचकगिरि मध्य में पर्वत।
जिनालय चार मैं पूजूँ अकृत्रिम स्वर्णमय शाश्वत।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपूर्वपश्चिमदक्षिणउत्तरचतुर्दिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

समर्पित अर्घ्य हे जिनवर ! चतुर्गति दुःख नाशूँगा।
शाश्वत सिद्धपद पाकर सभी दुःख मैं विनाशूँगा।।
रुचकवर द्वीप तेरहवाँ रुचकगिरि मध्य में पर्वत।
जिनालय चार मैं पूजूँ अकृत्रिम स्वर्णमय शाश्वत।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपूर्वपश्चिमदक्षिणउत्तरचतुर्दिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

त्रोटक

दिशि पूर्व रुचकगिरि जिन महान, है अर्घ्य समर्पित गुण निधान।
जयदेव सुदेव जिनेन्द्र प्रभो, भव तारण तरण महान विभो।।
शुद्धात्म स्वरूप प्रकाशक हो, प्रभु सकल विभाव विनाशक हो।
मैं भी तुव पथ पर आऊँगा, परमात्म परम पद पाऊँगा।।१।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपूर्वदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

झूलना

जिनदेव प्रभु पावनपरम निजगेह में छविमान।
रुचक गिरि दक्षिण दिशा जिन गृह जपूँ धर ध्यान।।
प्रभु ज्ञान रवि चैतन्य चिन्तामणि सुदेव प्रधान।
जिनशरण पा आज ही मैं लहूँ सम्यक् ज्ञान।।२।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितदक्षिणदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रृंगार

दिशा पश्चिम गिरि रुचक प्रधान, जिनालय श्री अरहंत महान।
चढ़ाऊँ अर्घ्य महान अनूप, वरूँ प्रभु मैं शुद्धात्म स्वरूप।।
यही है भाव हृदय में देव, बनूँ मैं परम शुद्ध स्वयमेव।
शीघ्र पाऊँ मैं केवलज्ञान, करूँ मैं प्राप्त नाथ निर्वाण।।३।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितपश्चिमदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कवित्त

पर को तज नेह भजूँ निज गेह, निजातम की प्रभु संगति पाऊँ।
आगम को अभ्यास करूँ नित, मोह निशा अब दूर भगाऊँ।।
समकित सन्मुख होके जिनेश्वर, तुरतहि सम्यग्दर्शन लाऊँ।
नाश करूँ मिथ्यात्व महातम, चरित स्वरूपाचरण रिझाऊँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थितउत्तरदिक् जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाऽर्घ्य

गीतिका

प्रेम से सम्यक्त्व ने दृढ़ ज्ञान आत्मा का दिया।
सौजन्य से चारित्र ने तत्काल गोदी में लिया।।
ज्ञान भानु उदय हुआ चिन्मय चिदंकित हो गया।
ज्ञान धारा ने सहज आनंद धारा को दिया।।

शुद्ध विमल प्रदीप ही लाया प्रकाश महान उर।
पूर्ण चंद्र उदय हुआ तो अमृत सागर पी लिया।।

हृदय मेरा प्रफुल्लित हो पुष्प सम कोमल हुआ।
ध्यान मैंने आत्मा का प्रेम से तत्क्षण किया।।

कहाँ माणिक कहाँ मोती कहाँ समकित के वचन।
सहज भाव महान पा निज भाव में ही मैं जिया।।
मिली बेला शुद्ध संयम की महा पुरुषार्थ से।
श्रमण हो निर्ग्रंथ पथ निर्वाण के हित चुन लिया।।

साध्य साधक साधना का भी विकल्प नहीं रहा।
मात्र अपनी आत्मा को आत्मा में पा लिया।
दूर था जो मुक्ति-पथ वह पास मेरे आ गया।
पारकर उसको सहज ही मोक्ष सुख उर में लिया।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

जिन पूजन के भाव से होता अति आनन्द।
रत्नत्रय फल प्राप्त हो भोगूँ परमानन्द।

समान सवैया

परपरिणति ने घूँघट डाला मेरे ऊपर मोह भाव का।
निजपरिणति ने घूँघट खोला तो दर्शन पाया स्वभाव का।।
अब न किसी का भय है मुझको मैं स्वतंत्र स्वाधीन हो गया।
नाम नहीं कोई लेता है अब मेरे सन्मुख विभाव का।।

भेदज्ञान निधि मुझे मिल गई सम्यग्दर्शन निकट आ गया।
अब तो प्रभु अवसर आया है आठों कर्मों के अभाव का।।
राग भाव हो गया तिरोहित द्वेष सिसकता है रो रोकर।
अब पुरुषार्थ जगा है मेरा एक मात्र निज शुद्ध भाव का।।

ज्ञान स्वभावी चेतन मेरा था अज्ञान भाव में मोहित।
अरहंतो के दर्शन पाए नष्ट हुआ अज्ञान भाव का।।

शक्ति अनंतानंतों का स्वामी होकर भी अति दुर्बल था।
निज स्वरूप दर्शन पाते ही अंत हो गया आवजाव का।।
निज परिणति की कृपा हुई है रोम रोम पुलकित है मेरा।
पूर्ण स्वस्थ हो गया प्रभो मैं नाम न है अब कर्म घाव का।।

ॐ ह्रीं श्री रुचकगिरिस्थित जिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कवित्त

जिनराज जपे भव भाव तजे,
अब, उत्तम स्वच्छ भयो यह जीवन।
ज्ञान जग्यो निज भान भयो,
पर से अति भिन्न लख्यो यह चेतन।।
अब आतम ज्योति जगी उर में,
निज रूप सुहाय गयो मनभावन।
जिनदेव कृपा बरसी समता,
सम भाव महान भयो अति पावन।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

तू जाग रे चेतन प्राणी कर आतम की अगवानी।
जो आतम को लखतें हैं उनकी है अमर कहानी।टेक।।

है ज्ञान मात्र निज ज्ञायक जिसमें हैं ज्ञेय झलकते।
यह झलकन भी ज्ञायक है, इसमें नहिं ज्ञेय महकते।।
मै दर्शन ज्ञान स्वरूपी मेरी चैतन्य निशानी।।१।।

अब समकित सावन आया, चिन्मय आनन्द बरसता।
भीगा है कण-कण मेरा, हो गई अखण्ड सरसता।।
समकित की मधु चितवन में झलकी है मुक्ति निशानी।।२।।

ये शाश्वत भव्य जिनालय, है शान्ति बरसती इनमें।
मानों आया सिद्धालय, मेरी बस्ती हो उसमें।।
मैं हू शिवपुर का वासी भव-भव की खतम कहानी।।३।।

१६

श्री त्रैलोक्य जिनालय पूजन

स्थापना

ताटक

तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम सर्व जिनालय को वंदन।
ऊर्ध्व-मध्य अरु अधोलोक के जिन-भवनों को करूँ नमन।।
हैं अकृत्रिम आठ कोटि अरु छप्पन लाख परम पावन।
संतानवे सहस्र चार सौ इक्यासी गृह मन भावन।।
कृत्रिम अकृत्रिम जो असंख्य चैत्यालय हैं उनको वंदन।
विनय भाव से भक्ति पूर्वक नित्य करूँ मैं जिनपूजन।।

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्। (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनं)

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (इति सन्निधिकरणम्)

अष्टक

विजया

शुद्ध चैतन्य जल से किया जब नह्वन।
आस्रव धूल स्वयमेव धुलने लगी।।
जन्म मरणादि पीड़ा हुई क्षीण अब।
पूजन करते ही परिणति उछलने लगी।
ऊर्ध्व मध्य अधो लोक के जिन भवन।
नाम लेते ही परिणति सँभलने लगी।।
द्रव्य प्रासुक सजायी विनय भाव से।
मन में अनुभव की मिश्री ही घुलने लगी।।

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध चैतन्य की गन्ध भायी मुझे।
बंध की गाँठ स्वयमेव खुलने लगी।।
ताप संसार का अब उतरने लगा।
आत्मा निज तुला पर ही तुलने लगी।।
ऊर्ध्व मध्य अधो लोक के जिन भवन।
नाम लेते ही परिणति सँभलने लगी।।
द्रव्य प्रासुक सजायी विनय भाव से।
मन में अनुभव की मिश्री ही घुलने लगी।।

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

परिणति द्रव्य में जब अखण्ड मिली।
निर्जरा भावमय नृत्य करने लगी।।
शुद्ध निर्बन्ध अक्षय स्वपद पा लिया।
आत्मा पूर्व बंधों को हरने लगी।।
ऊर्ध्व मध्य अधो लोक के जिन भवन।
नाम लेते ही परिणति सँभलने लगी।।
द्रव्य प्रासुक सजायी विनय भाव से।
मन में अनुभव की मिश्री ही घुलने लगी।।

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान में ज्ञान होता सहज लीन अब।
काम की वासना पूर्ण गलने लगी।।
उर में जागी महाशील की साधना।
अपने निष्काम पद को मचलने लगी।।
ऊर्ध्व मध्य अधो लोक के जिन भवन।
नाम लेते ही परिणति सँभलने लगी।।
द्रव्य प्रासुक सजायी विनय भाव से।
मन में अनुभव की मिश्री ही घुलने लगी।।

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध चैतन्य रसमय चरु प्राप्तकर।
चिर क्षुधा व्याधि स्वयमेव टलने लगी।।
तृप्ति परिपूर्ण आयी निकट मेरे अब।
आत्मा उसको पाने मचलने लगी।।
ऊर्ध्व मध्य अधो लोक के जिन भवन।
नाम लेते ही परिणति सँभलने लगी।।
द्रव्य प्रासुक सजायी विनय भाव से।
मन में अनुभव की मिश्री ही घुलने लगी।।

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध चैतन्य ज्योति जली ज्ञानमय।
रात अज्ञान की पूर्ण ढलने लगी।।
भेद विज्ञान का सूर्य चमका हृदय।
भ्रान्ति संसार की सर्व जलने लगी।।
ऊर्ध्व मध्य अधो लोक के जिन भवन।
नाम लेते ही परिणति सँभलने लगी।।
द्रव्य प्रासुक सजायी विनय भाव से।
मन में अनुभव की मिश्री ही घुलने लगी।।

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

भावना शुक्ल ध्यानी जगी जब हृदय।
धूप दश धर्म की राग दलने लगी।।
कर्म आठों की ज्वाला हुई शान्त अब।
दुख की बदली सदा को ही टलने लगी।।
ऊर्ध्व मध्य अधो लोक के जिन भवन।
नाम लेते ही परिणति सँभलने लगी।।
द्रव्य प्रासुक सजायी विनय भाव से।
मन में अनुभव की मिश्री ही घुलने लगी।।

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वानुभव फल फले ज्ञान तरु शाख पर।
अब विभावों की चर्चा भी टलने लगी।।
लहलहाने लगा मुक्ति का खेत अब।
साम्य भावों की बरसात फलने लगी।।
ऊर्ध्व मध्य अधो लोक के जिन भवन।
नाम लेते ही परिणति सँभलने लगी।।
द्रव्य प्रासुक सजायी विनय भाव से।
मन में अनुभव की मिश्री ही घुलने लगी।।

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

भावना अर्घ्य मैंने सजाए हृदय।
आत्म परिणति स्वभावों में पलने लगी।।
पद अनर्घ्य अपूर्व मिला शाश्वत।
मुक्ति रमणी विजन मुझ पै झलने लगी।।
ऊर्ध्व मध्य अधो लोक के जिन भवन।
नाम लेते ही परिणति सँभलने लगी।।
द्रव्य प्रासुक सजायी विनय भाव से।
मन में अनुभव की मिश्री ही घुलने लगी।।

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाऽर्घ्य

वीरछन्द

इस अनन्त आकाश बीच में तीन लोक है पुरुषाकार।
तीनों वातवलय से वेष्टित, सिंधु बीच ज्यों बिन्दु प्रसार।।

ऊर्ध्व सात है अधो सात है मध्य एक राजू विस्तार।
चौदह राजू उतंग लोक है त्रस नाड़ी त्रस का आधार।।

तीन लोक में भवन अकृत्रिम आठ कोटि अरु छप्पन लाख।
संतानवे सहस्र चार सौ इक्यासी जिन आगम साख।।

ऊर्ध्व लोक में कल्पवासियों के जिनगृह चौरासी लक्ष।
संतानवे सहस्र तेईस जिनालय हैं शाश्वत प्रत्यक्ष।।

अधो लोक में भवनवासि के लाख बहत्तर करोड़ सात।
मध्य लोक के चार शतक अट्ठावन चैत्यालय विख्यात।।

जम्बूधातकि पुष्करार्ध में पंचमेरु के जिनगृह ख्यात।
जम्बूवृक्ष शाल्मलितरु अरु विजयारध के अति विख्यात।।

वक्षारों गजदंतों इष्वाकारों के पावन जिनगेह।
सर्व कुलाचल मानुषोत्तर पर्वत के वन्दूँ धर नेह।।

नंदीश्वर कुण्डलवर द्वीप रुचकवर के जिन चैत्यालय।
ज्योतिष व्यंतर स्वर्गलोक अरु भवनवासि के जिन आलय।।

एक एक में एक शतक अरु आठ-आठ जिनमूर्ति प्रधान।
अष्ट प्रातिहार्यों वसु मंगल-द्रव्यों से अति शोभावान।।

कुल प्रतिमा नौ सौ पच्चीस करोड़ तिरेपन लाख महान।
सत्ताइस सहस्र अरु नौ सौ अड़तालीस अकृत्रिम जान।।

उन्नत धनुष पांच सौ पद्मासन हैं रत्नमयी प्रतिमा।
वीतराग अर्हन्त मूर्ति की है पावन अचिन्त्य महिमा।।

असंख्यात संख्यात जिन-भवन तीन लोक में शोभित हैं।
इन्द्रादिक सुर नर विद्याधर मुनि वन्दन कर मोहित हैं।।

देव रचित या मनुज रचित हैं भव्य जनों द्वारा वंदित।
कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय की पूजन कर मैं हूँ हर्षित।।

ढाईद्वीप में भूत भविष्यत वर्तमान के तीर्थंकर।
पंचवर्ण के मुझे शक्ति दे मैं निज पद पाऊँ जिनवर।।

जिनगुण संपति मुझे प्राप्त हो परम समाधिमरण हो नाथ।
सकल कर्म क्षय हो प्रभु मेरे बोधि लाभ हो हे जिननाथ।।

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

श्री जिनवर के ज्ञान में झलके ज्ञान स्वभाव
गुण अनन्त मण्डित सदा त्रैकालिक ध्रुव भाव

मानव

जीवंत शक्ति का स्वामी जीवत्व शक्ति से जीता।
पर का परमाणु न भीतर परभावों से है रीता।।

है दर्शन ज्ञान स्वभावी चैतन्यचंद्र चिद्रूपी।
आनंद अतीन्द्रिय सागर है एक स्वरूप अरूपी।।

एकत्व विभक्त त्रिकाली चेतन सर्वोत्कृष्ट है।
पांचो परमेष्ठी पद से भूषित है यही इष्ट है।।

इसकी सेवा के फल से शाश्वत शिव पद मिलता है।
सुख सदा ध्रौव्य त्रैकालिक स्वयमेव सतत झिलता है।।

गुणमणियाँ जड़ी अनंतों चैतन्य धातु निर्मित है।
इसकी महिमा से जगती का कण कण ज्ञान विहित है।।

यह भूत भविष्य विद्य को युगपत ही जान रहा है।
गुण-द्रव्य सकल पर्यायें प्रतिपल पहचान रहा है।।

इन्द्रादिक सुर नत होते ऋषि मुनि गणधर गुण गाते।
इसके चरणों में आकर वे स्वयंसिद्ध हो जाते।।

जितने भी सिद्ध हुए हैं होते हैं होंगे आगे।
वे सब इसके ही बल से अपने स्वभाव में जागे।।

पहिले मिथ्यात्व विनाशा फिर अविरति दशा विनाशी।
फिर हर कषाय योंगो को हो गए अचल अविनाशी।।

यह मोक्षमार्ग रत्नत्रय द्वारा निर्मित होता है।
जब मुक्ति भवन मिलता है तो जग विस्मित होता है।।

मैं भी रत्नत्रय पाकर त्रैलोक्य शिखर जाऊँगा।
अपने स्वभाव के बल से निज सिद्ध स्वपद पाऊँगा।।

इसलिए आज मैंने की त्रैलोक्य जिनालय पूजन।
मैं स्वयं अकृत्रिम चेतन पाऊँगा सम्यग्दर्शन।।

त्रैलोक्य जिनालय वन्दूँ मैं अधोलोक जिन ध्याऊँ।
फिर मध्यलोक जिनमंदिर दर्शन कर के हर्षाऊँ।।

फिर ऊर्ध्व लोक तक जाऊँ जिनवर पूजन कर आऊँ।
चैत्यालय तीन लोक के मैं पूजूँ बहु सुख पाऊँ।।

ये तीन लोक जिनमंदिर हैं सर्व अकृत्रिम पावन।
इनकी छवि स्वर्णमयी है हैं रत्नबिम्ब मन भावन।।

इन्द्रादिक सुर सब मिल कर करते हैं जिनवर पूजन।
उत्तम जिन-छवि निहारते पाते हैं सम्यग्दर्शन।।

मैं भी जिन-छवि में अपनी छवि निरखूँ परम प्रभावी।
प्रभु भेदज्ञान निधि पाऊँ मैं भी परद्रव्य अभावी।।

भाए त्रैलोक्य जिनालय मैंने अपने को निरखा।
अपने अनंत गुण देखे सिद्धों सम निज को परखा।।

हलचल सी हुई हृदय में हो गई क्रान्ति निज घर में।
मिथ्यात्व दशा विघटाई अब है न भ्रान्ति अंतर में।।

ॐ ह्रीं श्री त्रैलोक्यसम्बन्धीसर्वजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

त्रैलोक्य के पावन जिनालय आज पूजे भाव से।
हे जिनेश्वर अब जुड़ूँ मैं शुद्ध आत्म स्वभाव से।।
साम्य भावी भावना का ही हृदय में राज्य हो।
ज्ञान दर्शन मयी अपना सिद्धसम साम्राज्य हो।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

शान्ति पाठ

रोला

भाव शुभाशुभ आकुलतामय जिन बतलाते।
चेतन से हैं भिन्न किन्तु फिर भी हो जाते।।
इनसे नहिं तन्मय होता रहता मैं चिन्मय।
यही मंत्र है आत्म शान्ति का जाना सुखमय।।

विश्व शान्ति के मूल स्रोत का ध्यान लगाऊँ।
समभावी बन साम्य-भाव से हृदय सजाऊँ।।
द्रव्य-दृष्टि से सभी आत्माएँ समान हैं।
गुण अनंत से भूषित त्रैकालिक महान हैं।।

परिणति में हो शान्ति प्रभो ! आकुलता नाशे।
परम शान्तिमय चेतन तत्त्व मुझे प्रतिभासे।।
आत्म शान्ति ही मूल मंत्र है विश्वशान्ति का।
आत्मशान्ति के लिए नाश हो सकल भ्रान्ति का।।

नौ बार णमोकार मंत्र द्वारा पंचपरमेष्ठी का स्मरण करें।

क्षमायाचना

पूजन में जो भूल हुई हो क्षमा करो प्रभु।
जबतक मिले न निजपद उर में रहा करो विभु।।
तुव पद चिन्हों पर चलकर निज वैभव पाऊँ।
आप कृपा से मुक्ति मार्ग पा शिव सुख पाऊँ।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

हमारे यहाँ प्राप्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के प्रवचन
प्रवचनरत्नाकर भाग 1 से 11 तक/नयप्रज्ञापन
दिव्यध्वनिसार प्रवचन/समाधितंत्र प्रवचन
मोक्षमार्ग प्रवचन भाग-1,2,3,4/ज्ञानगोष्ठी
श्रावकधर्मप्रकाश/भक्तामर प्रवचन
सुखी होने का उपाय भाग 1 से 8 तक
वी.वि. प्रवचन भाग 1 से 6 तक/कारणशुद्धपर्याय
डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रकाशन
समयसार(ज्ञायकभावप्रबोधिनि)/समयसार का सार
समयसार अनुशीलन सम्पूर्ण भाग 1,2,3,4,5
प्रवचनसार (ज्ञायज्ञेयप्रबोधिनि)/प्रवचनसार का सार
प्रवचनसार अनु. भाग-1 से 3/णमोकार महामंत्र
चिन्तन की गहराईयाँ/सत्य की खोज/बिखरे मोती
बारह भावना : एक अनुशीलन/धर्म के दशलक्षण
बालबोध भाग 1,2,3/तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग 1,2
वी.वि. पाठमाला भाग 1,2,3/ध्यान का स्वरूप
आत्मा ही है शरण/सूक्तिसुधा/आत्मानुशासन
पं. टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व
47 शक्तियाँ और 47 नय/रक्षाबन्धन और दीपावली
तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ
भ. ऋषभदेव/प्रशिक्षण निर्देशिका/आप कुछ भी कहो
क्रमबद्धपर्याय/दृष्टि का विषय/गागर में सागर
पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव/जिनवरस्य नयचक्रम्
पश्चात्ताप/मैं कौन हूँ/मैं स्वयं भगवान हूँ/अर्चना
मैं ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ/महावीर वंदना (कैलेण्डर)
णमोकार एक अनुशीलन/मोक्षमार्ग प्रकाशक का सार
रीति-नीति/गोली का जवाब गाली से भी नहीं
समयसार कलश पद्यानुवाद/योगसार पद्यानुवाद
कुन्दकुन्दशतक पद्यानुवाद/शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद
पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल के प्रकाशन
जान रहा हूँ देख रहा हूँ/जम्बू से जम्बूस्वामी
विदाई की बेला/जिन खोजा तिन पाईयां
ये तो सोचा ही नहीं/अहिंसा के पथ पर
सामान्य श्रावकाचार/षट्कारक अनुशीलन
सुखी जीवन/विचित्र महोत्सव
संस्कार/इन भावों का फल क्या होगा
यदि चूक गये तो

अन्य प्रकाशन
मोक्षशास्त्र/चौबीस तीर्थंकर महापुराण
बृहद जिनवाणी संग्रह/रत्नकरण्डश्रावकाचार
समयसार/प्रवचनसार/क्षत्रचूड़ामणि
समयसार नाटक/मोक्षमार्ग प्रकाशक
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाग-2 (पूर्वार्द्ध+उत्तरार्द्ध) एवं भाग3
बृहद द्रव्यसंग्रह/बारसाणुवेक्खा
नियमसार/योगसार प्रवचन/समयसार कलश
तीनलोकमंडल विधान/ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव
आचार्य अमृतचन्द्र : व्यक्तित्व और कर्तृत्व
पंचास्तिकाय संग्रह/सिद्धचक्र विधान
भावदीपिका/कार्तिकेयानुप्रेक्षा/मोक्षमार्ग की पूर्णता
परमभावप्रकाशक नयचक्र/पुरुषार्थसिद्ध्युपाय
इन्द्रध्वज विधान/धवलासार/द्रव्य संग्रह
रामकहानी/गुणस्थान विवेचन/जिनेन्द्र अर्चना
सर्वोदय तीर्थ/निर्विकल्प आत्मानुभूति के पूर्व
कल्पद्रुम विधान/तत्त्वज्ञान तरंगणी/रत्नत्रय विधान
नवलब्धि विधान/बीस तीर्थंकर विधान
पंचमेरु नंदीश्वर विधान/रत्नत्रय विधान
जैनतत्त्व परिचय/करणानुयोग परिचय
आ. कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार
कालजयी बनारसीदास/आध्यात्मिक भजन संग्रह
छहढाला (सचित्र)/शीलवान सुदर्शन
जैन विधि-विधान/क्या मृत्यु अभिशाप है?
चौबीस तीर्थंकर पूजा/चौसठ ऋद्धि विधान
जैनधर्म की कहानियाँ भाग 1 से 15 तक
सत्तास्वरूप/दशलक्षण विधान/आ. कुन्दकुन्ददेव
पंचपरमेष्ठी विधान/विचार के पत्र विकार के नाम
आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंच परमागम
परीक्षामुख/मुक्ति का मार्ग/युगपुरुष कानजीस्वामी
अलिंगग्रहण प्रवचन/जिनधर्म प्रवेशिका
वीर हिमाचलतैं निकसी/वस्तुस्वातंत्र्य
समयसार : मनीषियों की दृष्टि में/पदार्थ-विज्ञान
व्रती श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ/सुख कहाँ है ?
भरत-बाहुबली नाटक/अपनत्व का विषय
सिद्धस्वभावी ध्रुव की ऊर्ध्वता/अष्टपाहुड़
शास्त्रों के अर्थ समझने की पद्धति